UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180045
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/S22K Accession No. G.H. 2410

Author संगर, सत्यप्रकाश।

Title कितना ऊँचा कितना नीचा। 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

कितना ऊँचा कितना नीचा

सत्य प्रकाश संगर की अन्य पुस्तकें

घर की आन	(उपन्यास)
कली मुसकराई	,,
अफ्रीका का आदमी	(कहानी संग्रह)
अवगुण्ठन	,,
नया मार्ग	,,

कितना ऊँचा कितना नीचा

(कहानी संग्रह)

सत्य प्रकाश संगर

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

अक्टूबर १९५४]

[मूल्य दो रुपये

प्रकाशक :—
विप्लव कार्यालय
२१, शिवाजी मार्ग
ल ख न ऊ

इस पुस्तक के सर्वाधिकार अनुवाद सहित लेखक के आधीन हैं

मुद्रक
साथी प्रेस
२१ शिवाजी मार्ग
ल ख न ऊ

विषय सूची

१. कितना ऊँचा कितना नीचा ९
२. नशे में थी २१
३. जय शंकर ३५
४. वह अंग्रेज़ महिला ४९
५. यह है अपना देश ५७
६. पहिये ७१
७. कालेज के रास्ते में ९१
८. डा० लूकस १०५

कितना ऊँचा कितना नीचा

कितना ऊँचा कितना नीचा

सामने बर्फ से ढकी, हिमालय की गगनचुम्बी चोटियां हैं। सुबह को सूर्य की नन्हीं किरणें, बर्फ से प्रेमालिंगन कर, इसे चूमती हैं तो बर्फ का चेहरा हर्ष से चमक उठता है। ऐसा लगता है कि प्रकृति आनन्द-बाहुल्य से नाच उठी है। दिन भर की यात्रा के पश्चात् जब सूर्य शाम को पहाड़ के पीछे आराम करने जाता है तो उसकी सुनहरी किरणें बर्फ़ानी चोटियों से लिपट जाती हैं। बर्फ का सुन्दर चेहरा सुर्ख हो उठता है। सफेदी और सुर्खी का यह मिलन अत्यन्त मनमोहक होता है। इस समय का प्राकृतिक दृश्य अद्‌भुत मालूम देता है। देवदारू और बन के वृक्षों से भरा वन एक दम मूक हो जाता है। ये वृक्ष जिन्हें सूर्य का प्रकाश जीवन प्रदान करता है और जिस जीवन को प्राप्त कर वे घोरतम तूफ़ानों का हंस कर मुकाबला करते हैं, अपने प्रियतम के प्रस्थान करने के समय उसे सलामी देते हैं। वे बिल्कुल खामोश खड़े होते हैं और उनके साथ सारी सृष्टि मूक हो जाती है। पशु और पक्षी भी चुप हो जाते हैं। अपने प्रियतम के जाने का सब शोक मनाते हैं। परन्तु प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व वही वृक्ष आनन्द से झूमते हैं, पक्षी चहचहाते हैं और सारा जंगल आनन्द से नाच उठता है।

इन बर्फ़ानी चोटियों के बाईं ओर वाले पहाड़ एकदम नंगे से खड़े हैं जैसे नीले रंग के देव हों। बाईं ओर को वे क़द में कम होते जाते हैं और घटते-घटते मैदान से जा मिलते हैं। एक ओर वे आकाश की बुलंदियों को छूते हैं और दूसरी ओर वे ज़मीन की पस्तियों से जा मिलते हैं।

बंगले के लान में बैठ कर मैं चार सड़कों को देख सकता हूँ। नीचे पठानकोट से आने वाली सड़क है। जब बस इस टुकड़े पर ऊपर आती हुई नज़र आती है तो साथ ही साथ उसकी दुख भरी पुकार भी सुनाई देती है। चार घण्टे तक वह पृथ्वी से आकाश की ओर भागती, समुद्र की सतह से छः हज़ार फुट ऊपर आ पहुँची है। इस सख़्त चढ़ाई में उस का दम फूल जाता है और इंजन क्रन्दन करने लगता है। यह बस पठानकोट से गर्मी से व्याकुल यात्रियों को लिये आ रही है। अधिकतर लोग दूर मैदानों के वासी हैं, जिन में पैसे वाले तो कम परन्तु दिल वाले अधिक होते हैं। पहाड़ पर जाने के लिये केवल पैसे ही से काम नहीं चलता क्योंकि हर पैसे वाला इस नेमत से लुत्फ़ नहीं उठा सकता। यहां के दृश्यों का आनन्द उठाने के लिये तड़पने वाले दिल की भी ज़रूरत है।

बस एजंसी पर आकर रुकती है तो कुली लोग उस पर बुरी तरह से टूट पड़ते हैं। ड्राइवर या कंडक्टर से पूछे बिना वे मोटर की छत पर चढ़ जाते हैं। जो सामान जिस के हाथ लगता है वह उसे नीचे उतार लेता है। जब तक वह सामान को घर न पहुँचा दे, वही उस सामान का मालिक बनता है।

वह देखिये, सवारियां बस से उतर कर सड़क से ऊपर आ रही हैं। बाईं ओर की सड़क सदर बाज़ार को जाती है और दाईं ओर की पोस्ट आफ़िस को। आप दोनों सड़कों पर आते हुये यात्रियों को देख रहे हैं। आप से मिलिये। आप हैं लाला साईंदास—मिल मालिक। आप पिछले चार वर्ष से लगातार यहां आते हैं। आपने पैसे कमाने की मशीन इतनी

तेज़ी से चलाई कि आप के पेट की मशीन सुस्त पड़ गई। सख़्त बीमारी में पानी की तरह पैसा बरबाद करने के बाद भी जब आप अच्छे न हुये तो डाक्टरों ने यहां आने का परामर्श दिया। आपने डलहौज़ी वालों के हाल पर दया की और यहां तशरीफ़ ले आये। लाला साईंदास जी उन प्रतिष्ठित महानुभावों में से हैं जिन्होंने धन कमाने में अपना मन और दूसरों का तन प्रयोग करने में कभी संकोच नहीं किया। पैसे को संभाल कर रखने के लिये आपने हर उचित तथा अनुचित साधन का उपयोग किया। जहां एक ओर आपने मुलाज़िमों को कम वेतन पर रखने का प्रयत्न किया, वहां आयकर बचाने के लिये भी कोई कसर न उठा रखी। आपने इस सिद्धांत को याद कर रखा था कि यदि हज़ार बचाने के लिये सौ खर्चना पड़े तो ज़रूर खर्च डालो। इस प्रकार जहाँ उन्होंने सैंकड़ों व्यय किये, वहां हज़ारों बचाये, नहीं तो किस तरह अमृतसर जैसे बड़े शहर में दो विशाल बंगले बना सकते? पैसों के बिना अपने दोनों लड़कों को अमरीका कैसे भेज सकते? और फर्स्ट क्लास कार कैसे रख सकते हैं?

और वह कौन आ रहे हैं? सुप्रसिद्ध नेता, रौनकीराम जी। प्रांत के विख्यात सेठ बनवारीलाल के सुपुत्र। सेठ बनवारीलाल के नाम से कौन परिचित नहीं? आप ही वह महानुभाव हैं जो कुछ वर्ष पूर्व एक साधारण मुनीम से नगर सेठ बन गये। युद्ध काल में आपने ब्लैक को अपनाकर दोनों हाथ इस तरह चलाये कि देखते-देखते लोगों का रुपया उनकी जेबों से निकल कर आप के पास आ गया। बुद्धिमान होने के साथ-साथ आप उदार हृदय भी हैं। इसी कारण वारफण्ड में अंग्रेज़ की दिल खोलकर सहायता की। अंग्रेज़ के चले जाने और नया विधान बनने के बाद आपके अन्दर देश प्रेम ने जोश खाया तो अपने सुपुत्र रौनक़ीराम को देश सेवा करने के विचार से संसद के लिये खड़ा कर दिया। रौनकीराम जी अपढ़ नहीं, बी० ए० एल० एल० बी० हैं। कौन जाने किस समय प्रांत के मुख्य मंत्री बन जायं। चुनाव से पहले

रौनक़ीराम ने हर पार्टी से टिकट की प्रार्थना की और वह अस्वीकार होने पर उन्होंने स्वतन्त्र उम्मेदवार की हैसियत से इलेक्शन लड़ा। उनके पैसे ने शत्रु के छक्के छुड़ा दिये। आजकल वे आज़ाद नहीं रहे, कांग्रेस में सम्मिलित हो गये हैं और हर मिलने वाले से गान्धी जी के सिद्धांतों पर चलने और शुद्ध खादी पहनने का अनुरोध करते हैं। अभी हाल ही में उनका छोटा लड़का सातवीं में फेल हो गया तो सेठ बनवारीलाल तथा उनके सुपुत्र ने स्कूल के हैडमास्टर को उसके घर जाकर खूब पीटा, पिछले दिनों अपनी लड़की के दहेज़ में आपने पांच हज़ार की केवल रेशमी साड़ियां दीं। सेठ जी स्वयं हिन्दू सभा के सदस्य हैं और रौनकी-राम के छोटे भाई दौलतराम कम्युनिस्ट पार्टी के उपमन्त्री हैं और उनके छोटे भाई सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य हैं। एक दो दिन यहां रहने के बाद रौनक़ीराम जी घोड़े पर बैठ कर चम्बा जायंगे जहां आप अपने कर कमलों द्वारा एक सब्ज़ी की दुकान का उद्‌घाटन करेंगे। पत्रों में भाषण प्रकाशित कराने के लिये पूरा प्रबन्ध कर लिया है। आपका इतना अनुग्रह ही क्या कम है कि आप दो दिन के लिये इस सूदूरस्थित नगर की रौनक को तो बढ़ायेंगे ?

उधर सदर को जाने वाली सड़क पर एक गोरा अपनी पीठ पर बिस्तर लादे जा रहा है। वह अमेरिकन मिशनरी मि० टाइगर है। हज़ारों मील से वह एक उन्नत देश और प्राचीन सभ्यता का संदेश लेकर इस पिछड़े हुये देश की भलाई करने के विचार से प्रभावित होकर यहा आया है। वह यहां के पहाड़ी लोगों को शान्ति के देवता ईसा मसीह का संदेश सुनाने और उन्हें ईसा की भेड़ों में शामिल करने आया है। ईसा पर ईमान ले आओ, ईसाई बन जाओ, फिर किसी बात की चिन्ता नहीं। मि० टाइगर धर्म प्रचार के साथ भारतवासियों मे पण्डित नेहरू की विदेश नीति के विरुद्ध, अमेरिकन गुट्ट में सम्मिलित होने का अनु-रोध भी करते है। और इन के समान पांच हज़ार अमेरिकन प्रचारक, भारत के विभिन्न प्रदेशों में फैल कर शान्ति के देवता ईसा मसीह,

प्रजातन्त्र के देवता श्री फ़ास्टर डलेस और मानवता के देवता श्री मैकार्थी की शिक्षा का प्रसार कर रहे हैं।

और वह देखिये पीठ पर ट्रंक और बिस्तर रखे कुली चले जा रहे हैं। वे नंगे पांव हैं या फटे हुए जूते पहने हैं। उन्होने कमीज़ और पाजामे पहनने की प्रथा ज़रूर पूरी की है परन्तु यदि कमीज़ें कन्धों से फटी हैं तो पाजामे घुटनों से जवाब दे गये हैं। वे अपने पास रस्से रखते हैं जिसकी सहायता से सामान को आसानी से बांध कर पीठ पर लाद लेते हैं। मनों बोझ पीठ पर लादे वे पहाड़ की सख्त चढ़ाई पर चढ़ जाते हैं जैसे कुछ बात ही न हो। एजेंसी से ऊपर एक हज़ार, दो हज़ार तीन हज़ार फुट की ऊँचाई पर वे इसी तरह लदे लदाये चले जाते हैं जैसे मनुष्य नहीं, पशु हों। मनुष्य बनने का उन्हें आजतक विचार नहीं आया क्योंकि हिन्दुस्तानी होने के नाते वे भाग्य पर संतुष्ट हैं। यदि पूर्व जन्म में उन्हों ने अच्छे कर्म किये होते तो बाबू अथवा साहिब, चौधरी अथवा ज़मींदार होते। उन्हों ने पशुओं से काम किये और पशुओं का काम कर रहे हैं और न जाने कितनी पीढ़ियों से। प्रकृति ने पहले ही से ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि कुली के घर कुली ही जन्म ले। सब पाप करने वाले एक ही जगह इकट्ठे कर दिये जाते हैं। हकूमतें आती हैं और चली जाती हैं, परन्तु प्रत्येक शासन को दूसरे कामों में इतना संलग्न रहना पड़ता है कि कुलियों जैसे निकम्मे लोगों की हालत को सुधारने के से फिजूल कामों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। और फिर ध्यान देने का लाभ ही क्या? शासक भी तो आख़िर हिन्दुस्तानी ही हैं, कर्म सिद्धान्त के अनुयाई। वे जानते हैं कि यदि उन्होने अच्छे कर्म किये होते तो अच्छे घरानों में पैदा होते। हिन्दुओं के बाद तुर्क आये, फिर पठान। उनके बाद मुग़ल और फिर अंग्रेज़। इन सब हकूमतों के दौर में कुली, कुली ही रहे। आज़ादी मिल जाने के बाद कुली आज भी कुली हैं। और भला क्या वह बाबू बनेगा या साहिब?

बंगले के बाईं ओर कोई पचास फुट पर, ठण्डी सड़क दिखाई देती है। यह डलहौज़ी की सबसे रौनक वाली जगह पोस्ट आफिस से शुरू होकर, चक्कर काटती और दायरा सा बनाती जाती है। चेचरिंग क्रास पहुँच कर वह गर्म सड़क में तबदील हो जाती है और पोस्ट आफ़िस आकर ख़त्म हो जाती है। पोस्ट आफ़िस ही डलहौज़ी की चौपाटी अथवा स्कैंडल पांयट है। शाम को यहां नुमाइश लगती है, सुर्ख़ी और पाउडर की, भड़कीले सूटों तथा सुन्दर साड़ियों की। बहुत से लोग अपनी नुमाइश करने और बहुत से नुमाइश देखने वहां जमा हो जाते हैं। यदि देखने वाले न हों तो नुमाइश की क़दर ही कौन करे? एक ज़माना था जब सायं के समय इस जगह खूब भीड़ होती थी। कंधे से कंधा भिड़ता था। यौवन का समुद्र लहरें मारता था। सुन्दर युवतियां अपने यौवन से नवयुवकों को मदमत्त और अपने तीखे नयनों के बानों से उन के हृदयों को छेदती थीं। नवयुवतियां एक ही रंग की सलवार, कमीज़ और दुपट्टा पहने, स्वर्ग के पुष्पों के समान अपनी सुगन्धि से मस्तिष्कों को सुगंधित करती थीं। कालजों के बांके जवां क़ीमती और फैशनदार गर्म सूट पहने बाजारे हुस्न में मदमत्त नयनों के बान खाने को व्याकुल नज़र आते थे। आज ज़माना बदल गया, भारत आज़ाद हो गया, अंग्रेज चला गया लेकिन कमबख़्त जाते समय अपने साथ डलहौजी की रौनक़ भी लेता गया। यहां के जीवन को नीरस और शुष्क कर गया। शाम को लोग अब भी इकट्ठे होते हैं। परन्तु अब यौवन और सौंदर्य का समुद्र लहरें नहीं मारता। फैशन का बाजार नहीं सजता और अलबेले बांके युवक नज़र नहीं आते। जिस जगह एक छोटी सी दुकान मिलना एकदम कठिन था, वहाँ अब बड़ी-बड़ी दुकानें खाली पड़ी हैं। जहां सूट-बूट में सुसज्जित दुकानदार हम जैसे ख़स्ता हालों को अपनी दुकान के नज़दीक आते देखकर नाक भौं सिकोड़ लेते थे अब हमें देखते ही दोनों बाज़ू फैलाकर हमारा इस प्रकार स्वागत करते हैं जैसे हम उन के घनिष्ट सम्बन्धी हों। इसे कहते हैं युग परिवर्तन।

अब इस नैसर्गिक सौंदर्य के बीच मानव यौवन देखने के लिये आंखें तरस जाती हैं। लेकिन वह सामने सड़क पर हल्का गुलाबी रंग का सूट नज़र आ रहा है। चेहरे पर भी वैसी ही सुर्खी है। बूटा सा क़द, लम्बे लम्बे बाल, और बेपनाह जवानी। इस सुन्दरी के पीछे, गंदे कपड़े पहने, एक दस वर्षीय बालक चला जा रहा है। वह भीगी बिल्ली की तरह सहमा हुआ है। उस के सिर पर मार्केट से खरीदी हुई चीज़ों से भरा हुआ टोकरा है। नवयुवती यहां से डेढ़ मील दूर और नौ हज़ार फुट ऊंचे ऊपर बकरोटे पर बने हुये एक बंगले पर रहती है। मार्केटिंग के साथ-साथ उसने सैर भी कर ली और नुमाइश भी दिखला दी। अपने बंगले में जाकर वह उस पहाड़ी लड़के के हाथ पर पूरे दो आने रख देगी।

नवयुवती चली गई और उसके पीछे राय साहिब तेजराम नज़र आये। गर्म पायजामा, बंद गले का ऊनी कोट, सिर पर रेशमी पगड़ी, हाथ में छड़ी और आंख में सुर्मा लगाये वे सैर कर रहे हैं। आप यहा के रईस और जागीरदार हैं, महाजन और साहूकार हैं। एक समय आप आनरेरी मैजिस्ट्रेट थे। न केवल यहां, बल्कि इर्द-गिर्द के इलाके में आप का रसूख़ था। आपका इतना प्रभाव और इतना रोबदाब था कि जंगल से गायों और भैंसों, घोड़ों और बैलों के लिये घास और जलाने के लिये ईंधन मुफ़्त ही मिल जाता था। फर्नीचर बनाने के लिये लकड़ी कौड़ियों के दाम मिल जाती थी। नौकर-चाकर बेगार में मिल जाते थे। राज-मज़दूर आप की सेवा के लिये बेताब रहते थे। प्रकृति की इतनी कृपा और प्रखर बुद्धि के कारण आपने यहां और इर्द-गिर्द के इलाकों में कोठियां और बंगले, दुकानें और मकान बनाये और उनके किराये से खूब माया जोड़ी। अपने लड़कों को इंग्लैंड भेजकर उत्तम शिक्षा दिलवाई और अंग्रेज़ों के पांव पर अपनी रेशमी पगड़ी रख कर उन्हें बड़े बड़े ओहदे दिलवाये। किसानों को सूद पर रुपया दिया और जब वे वापिस न लौटा सके तो उनकी जायदाद कुर्क करवाकर उन्हें उससे छुट्टी

दिलवाई। कम्पनियों के हिस्से खरीदे। जितना धन बढ़ता गया, उतनी लोलुपता बढ़ती गई। लेकिन जब आजादी आई, खुशी आप का साथ छोड़ गई। जब लोग आज़ादी की खुशी में दीपमाला जला रहे थे आप सोग मना रहे थे। अंग्रेज़ के जाने के कारण आप शोकातुर हो रहे थे। ऐसा होना भी चाहिये था। कुछ दिनों के बाद आनरेरी मैजिस्ट्रेटी समाप्त हो गई। जागीरदारी के कानून बनने लगे। आपके एक सम्बन्धी एक स्टेट की दीवानी से पृथक कर दिये गये और उनकी नौकरी जाने से आप की सोने की कान बन्द हो गई। जब रियासत ही न रही, दीवानी कैसे रहती? उन्होंने जी भर कर सरदार पटेल को कोसा। यह भी क्या शराफ़त है कि लोगों से उनकी गद्दियाँ छीन लीं? और फिर खुद को भी क्या मिला? जाते समय तो दुनिया से ख़ाली हाथ ही गये ना?

और यह दुबले-पतले, परेशां हाल कौन चले आ रहे हैं? स्कूल मास्टर माधोराम। आप पिछले तीस वर्ष से स्कूल में पढ़ा रहे हैं और भत्ते समेत पूरे साठ पाते हैं। घर में आपकी पत्नी, चार बच्चे, एक विधवा बहन और विधवा माँ हैं। इन सबके गुजारे और बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध स्वयं मास्टर साहिब को करना होता है। और यदि वे स्वयं न करें तो क्या पड़ोसी करें या नेता? ज़िले के बहुत से नवयुवक जो यहाँ और बाहर बड़े-बड़े ओहदों पर लगे हुये हैं, और इलाके के बड़े-बड़े वकील और सेठ, सब मास्टर जी के चेले-चांटे रह चुके हैं। जिस तरह सड़क का साइनबोर्ड, यात्रियों को मंजिल की ओर जाने का संकेत करते हुये स्वयं अपनी जगह पर खड़ा रहता है, उसी प्रकार माधोराम भी अनगिनत व्यक्तियों को मज़िल पर पहुँचाने के बाद स्वयं उसी जगह खड़े या बैठे हैं। नेता लोग उन्हें राष्ट्रनिर्माता का नाम देकर उनकी तसल्ली करते रहते हैं और अपने हर भाषण में शिक्षा-पद्धति को सुधारने के साथ, राष्ट्रनिर्माता की स्थिति को संवारने का प्रचार करते हैं और अवसर मिलने पर सबसे पहला प्रहार, उसी की गर्दन पर करते हैं। राष्ट्रनिर्माता बड़ी शान्ति से इस प्रहार को सहता और खामोश

रहता है, क्योंकि शान्ति और खामोशी प्रशंसनीय गुण हैं और राष्ट्रनिर्माता को और भी सम्मान योग्य बनाते हैं।

"बाबू जी! कोयले चाहिये?" आपके कान में बारीक-बारीक आवाज़ें आती हैं।

मुड़कर देखिये, तीन चार स्त्रियाँ आपकी ओर आशापूर्ण दृष्टि से देख रही हैं। वे नंगे पाँव हैं और चूड़ीदार पाजामे पहने हैं। गले में कपड़े की थैली में उनके बच्चे लटक रहे हैं और पीठ पर कोयले से भरे किल्टे (टोकरे) रखे हैं। वे यहाँ से छः मील दूर, नौ हज़ार फुट की उँचाई पर से पीठ पर कोयले के किल्टे रखे और गले में बच्चे लटकाये आती हैं। वहाँ वे कोयला बनाती हैं और यहाँ आकर बेचती हैं। एक किल्टा मुश्किल से एक रुपये में बिकता है। उस एक रुपये का सौदा लेकर जिसमें आटा या तेल ही होता है, वे ६ मील का पहाड़ी रास्ता और सख़्त चढ़ाई तय करती हैं। दिसम्बर में सख़्त बर्फबारी होने पर उन्हें वहाँ से भागना पड़ता है ताकि नीचे जाकर, अप्रैल तक मेहनत मजूरी करके अपना पेट पाल सकें।

आपका ध्यान कोयले वाली से हटा तो लकड़ी वाले की ओर आकृष्ट हो गया। दाईं ओर साथ वाली सड़क पर वह एक वज़नी शहतीरी पीठ पर लादे उसके बोझ से झुका हुआ जा रहा है। यह भी उसी जगह से आता है जहाँ से कोयलेवाली कोयला लाती हैं। पीठ पर शहतीर रखे वह छः मील का पहाड़ी और दुर्गम मार्ग तय करके चला आ रहा है। वह बुरी तरह हाँप रहा है। उसके सारे शरीर से पसीना छूट रहा है। इतने घोर श्रम के बाद वह केवल दो रुपये की मज़दूरी का हक़दार बनता है और सारे कुटुम्ब के पालन-पोषण का बोझ अपने कंधों पर संभालता है। इस बीसवीं शताब्दी में जब साईंस ने उन्नति करते २ प्रकृति पर विजय प्राप्त कर, परमाणु और उद्रजन बम का आविष्कार कर लिया है, इस देश का अभागा मज़दूर आज भी पीठ पर मनों बोझ लादे, मीलों तक पैदल चलता है, परन्तु वह इसे बहुत ग़नीमत समझता है।

यदि विज्ञान ने यहाँ भी पदार्पण कर लिया तो वह आजीविका के इस साधन से भी वंचित रह जायगा।

और आखिर में आप से मिलिये। आप हैं हमारे नवयुवक मित्र बी० एन० कपूर, कालेज के छात्र और विख्यात स्टूडेण्ट नेता। आप नई कट का अमेरिकन सूट पहने हैं। बेहद ऊँचा कोट और खुले और ऊँचे पावों वाली पेंट पहने वह इस तरह मालूम दे रहे हैं जैसे डलहौज़ी की ठण्डी सड़क पर नहीं, नदी के किनारे दलदल में चले जा रहे हों। पहले पोशाक मे अंग्रेज़ों की नक़ल करते थे, अब अमेरिकनों की, क्योंकि नक़ल करना आपका पेशा है और आप पेशे से मज़बूर हैं, यह मजबूरी आपको परीक्षा में भी परेशान करती है। गत वर्ष आपने इतिहास के पेपर में डटकर नक़ल की। जब पकड़े गये तो कुछ लड़कों की सहायता से इनविजिलेटर की मुरम्मत करा दी। आखिर लीडरी का और लाभ ही क्या? दण्ड से बचने के लिये रिश्वत का हथियार बरता, इस पर और दण्ड पल्ले पड़ा। अब आप लड़कों की लीडरी छोड़कर जनता की लीडरी करते हैं और अगले चुनाव में खड़े होने की तैयारी कर रहे हैं। आपके व्यक्तित्व से देश को कितनी आशायें हैं! यदि आप मन्त्री बनकर देशसेवा न कर सके तो राजदूत बनकर दूसरे देशों में भारत का नाम ऊँचा कर सकेंगे। जब आप अमेरिकन कट का सूट पहन कर और सिर पर फेल्ट रखकर, हाथ में छड़ी और मुँह में सिगार लेकर चलते हैं तो कितने शानदार लगते हैं। क्लब में जिस अन्दाज़ से ह्विस्की पीते और फ्लाश खेलते हैं, बिल्कुल उसी अन्दाज़ से सिनेमा में सिगरेट पीते और हुल्लड़बाज़ी करते हैं। उनके इन कारनामों से लोग प्रभावित हो जाते हैं। नेता बनने के लिये रोब जमाना बहुत ज़रूरी है और यह गुण आप ने स्कूल में मास्टरों और कालेज में प्रोफेसरों की अवज्ञा और उनसे बदकलामी करके हासिल किया है।

लीजिये साहिबा लंच का समय आगया। सड़कें तो चलती रहेंगी लेकिन लंच का समय तो आज लौटकर नही आयगा।

नशे में थी

२

नशे में थी

लड़कियां उसके सिर हो गईं। देखिये ! आज तो फाइन वैदर है। आज तो आउटिंग को चली चलिये। वे सब हास्टल में रहने वाली लड़कियां थीं। दिन रात वही कालेज की चार दीवारी ! ऊंह कितनी पाबन्दियां !! क्लास ख़त्म होते ही अपने कमरे में जा बैठो, बाहर जाने की इजाज़त नहीं। किसी से मिल भी नहीं सकतीं। पूरे सप्ताह में कुल दो घण्टे के लिये बाहिर जाना और वह भी चपरासी की निगरानी में। और चन्दन कम्बख़्त निश्चित समय से एक मिनिट ज्यादा बाहर रहने को तैय्यार न होता। कैदियों जैसी इस ज़िन्दगी से वे सब उकता गई थीं। उन्हें लड़कों की ज़िन्दगी पर रश्क आता था। जहां चाहें फिरें। साइकिल उठाई और लारंस चले गये। नहर की सैर को निकल गये। शालामार हो आये। बोटिंग का मज़ा लें या सिनेमा देखें। कोई रोक नहीं, कोई पाबन्दी नहीं। क्या हम लड़कियां बाहर के जीवन से मुरझा जायंगी ? क्या लोग हमें खा जायंगे ? भला यह जिन्दगी भी कोई ज़िन्दगी है ?

आज मौसम सुहाना था। बादल आकाश में अठखेलियां कर रहे थे। बागों में कितनी बहार होगी। पक्षियों के मधुर गीत, म्यूरों का आकर्षक नृत्य। उनके दिलों में एक मीठी सी कसक जाग उठी। यही

दृश्य तो जीवन का वास्तविक रस है। उनके बिना जीवन नीरस और शुष्क रहता है। उन्होंने मिस श्यामा को घेर लिया। आज तो अवश्य किसी बाग में जायंगे।

लेकिन श्यामा तो प्रिंसिपल न थी। मिस अग्रवाल की आज्ञा लेना ज़रूरी था और वह थी बड़ी निष्ठुर। वह लड़कियों को इतनी आज़ादी देने के पक्ष में नहीं थी। लड़कियां आज़ादी का दुरोपयोग करती हैं। उन्हें अनुशासन में रखने की ज़रूरत है। डांट-डपट से काम न चले तो प्यार चुकमार से समझाना चाहिये। सहानुभूति दिखलाकर मनाना चाहिये। लेकिन रखना चाहिए लड़कियों को अपनी मुट्ठी में ही। लड़कियां बेचारी तंग आकर उनके सामने शस्त्र डाल देतीं। प्रिंसिपल से बहस कौन करे? मगर आज मामला ही और था। उन्हों ने मिस अग्रवाल के दफ्तर के सामने जैसे डेरे डाल दिये। त्रियाहठ भी था और बालहठ भी। आख़िर प्रिंसिपल को हार माननी पड़ी। उन्हें फाइन डे मनाने की आज्ञा मिल गई।

सबकी सब सुन्दर वस्त्र पहन, क्रीम पाऊडर लगा, आध घण्टे के अन्दर तैयार हो गईं। पांच छः टोलियाँ थीं। हर टोली की अपनी अपनी पृथक पोशाक थी। गुलाबी, चाक्लेट और सब्ज़ रंग की नुमाइश हो रही थी। एक टोली की सिर से पाँव तक एक ही पोशाक थी। जूता भी उसी रंग का था। सैर-सपाटे में धोती कौन पहिने! कमीज सलवार ही अच्छी लगती है। सीने पर साँप की तरह बल खाता हुआ दुपट्टा। मिस अग्रवाल को इसी बात पर एतराज़ था कि जब लड़कियाँ बाहर निकलती हैं तो ग़ारतगिरी के सामान से सुसज्जित होकर जाती हैं।

और श्यामा को लोगों और उनकी हरकतों पर गुस्सा आ रहा था। इस तरह दीदे फाड़-फाड़कर देख रहे हैं जैसे उन्होंने लड़कियाँ पहले कभी देखी ही नहीं। भला इसमें हैरानी की कौन सी बात है? एक कालेज की लड़कियाँ नूरजहाँ के मक़बरे की ओर जा रही हैं। क्या वह

निषिद्ध प्रदेश है ? क्या उस जगह उनसे पहले कोई नहीं गया ? लोग क्यों हैरान होकर देख रहे है ? उन्हें सम्बन्ध ही क्या ? जहाँ उनका जी चाहेगा जायंगी। लोग क्यों दख़ल दें ? इनमें सभ्यता तो नाम को नहीं। गंवार कहीं के ! बदतमीज़ !!! लानत है ऐसी शिक्षा पर। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् भी न तो ज़बान पर काबू है, न दिल और आँखों पर। सड़कों पर, सिनेमा में, स्टेशन पर, जो मुंह में आये, बकते हैं। शायद उनकी माँ-बहनें मर गई हैं। अगर उनसे भी कोई मज़ाक करे तो शायद उस समय भी यों ही बतमीज़ी से हँसेंगे। निर्लज्ज कहीं के ! आज़ादी के लिये आस्मान सिर पर उठा रखा था। आज़ादी मिल गई। मगर ये आज़ादी को जानें क्या ! स्त्रियों की इतनी मामूली सी आज़ादी भी इन्हें अखरती है। इनका चारदीवारी से बाहर निकलना भी इन्हें आश्चर्य में डाल देता है। बुड्ढों को भी तो लाज नहीं आती। आँखें फाड़-फाड़ कर देखते हैं और इन कालेज के छोकरों ने तो लाज तज डालने की जैसे सौगंद ही खा ली है। क्या पढ़ते हैं कालेजों में ? उस दिन प्रो० शर्मा कह रहे थे कि दीवारों पर स्त्रियो की तस्वीरें बना कर उनके नीचे अश्लील बातें लिखते रहते हैं, बस यह है उनकी शिक्षा ! भला ऐसी शिक्षा का लाभ ही क्या ? न आजीविका का साधन न सभ्यता का।

नूरजहां के मकबरे के पास पहुँच कर कालेज की बस रुक गई। चन्दन और शेखर ने सामान उतारा। फिर घास पर दरी बिछा दी। श्यामा वहीं बैठ गई। मगर लड़कियां क्यों बैठतीं ? वे तो क़ैद से छूट कर आई थीं। शहर से दूर, कालेज और हास्टल से दूर। परन्तु जब घूम फिर कर थक गईं तो आकर उसके पास बैठ गईं। मगर यह बैठना आराम करने के लिये नहीं था। स्वर्ण निरूला ने प्रस्ताव किया कि कोटला छुपाकी खेला जाय। प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हो गया। श्यामा को भी खेल में शामिल होना पड़ा। सब की सब एक गोल चक्कर बनाकर बैठ गईं। एक दुपट्टे को बल देकर कोड़ा बनाया गया।

एक लड़की इस कोड़े को लेकर चक्कर के गिर्द घूमने लगी। वह घूम रही थी और सब लड़किया आवाज़ मिला कर गा रही थीं।

> "कोटला छपाकी जुमेरात आई ए,
> जेहड़ा पिच्छे देखे ओहदी शामत आई ए।"

चक्कर काटने वाली भी चक्कर काटते में गा रही थी। परन्तु साथ ही उसकी आँखें भी घूम रही थीं। जिस किसी लड़की ने पीछे देखने की कोशिश की, शड़ाप से कोड़ा उसकी पीठ पर पड़ा ! लेकिन मारने वाले हाथ भी तो कोमल ही थे। घूमते-घूमते उसने कोड़ा एक लड़की के पीछे रख दिया और चक्कर काट कर उसे आ दबाया। कोड़ा खा कर वह भागी और हंसती, बल खाती, चक्कर काट कर अपनी जगह पर आ बैठी। फिर दूसरी की बारी आई, फिर तीसरी की..........हंसी और तालियों की बहार। मक़बरे की शान्त और मूक फ़िजां में जवानी के गीत, हंसी और कहकहे। श्यामा भी अपने कालज के ज़माने में इस खेल को बहुत पसन्द करती थी। जहांगीर के मकबरे के अहाते में उसने भी अपनी सहेलियो और सहपाठिकाओं के साथ कई बार यह खेल खेला था। एक बार वह यही गीत गाती हुई चक्कर के गिर्द घूम रही थी। उसने सावधानी से कोड़ा मिस बोस के पीछे रख दिया। वह भारी शरीर की थीं आसानी से भाग न सकी। फिर क्या था ! प्रिंसिपल की पीठ थी और श्यामा का कोड़ा।

अचानक श्यामा की पीठ पर कोड़ा पड़ा। वह बौखला कर उठ बैठी। वह यह भूल ही गई थी कि खेल हो रहा है। उठते ही भागी। भला बलवंतकौर से क्या मुकाबला ! फिर शिकारी ने शिकार को बेखबर ही में आ दबोचा था। बलवंत ने उसकी पीठ पर कोड़ों की वर्षा शुरू कर दी। श्यामा के पांव मन मन भर के हो गये। उसे अपनी जगह बहुत दूर मालूम होने लगी। चक्कर को छोड़ कर दूसरी ओर भाग निकली। बलवंत के कोड़े और भी जोर से पड़ने लगे। पास ही एक

झाड़ी थी। श्यामा ने जान बचाने के लिये इसकी आड़ ली। बलवन्त उसके पीछे लपकी। श्यामा ने उसे झाड़ी का चक्कर देना चाहा। बलवन्त ने उसका पीछा किया। दोनों झाड़ी के गिर्द आगे-पीछे भागने लगीं। लड़कियों का घेरा टूट चुका था, वे सब भी इस दौड़ का तमाशा देखने वहीं आ गईं

श्यामा पूरी शक्ति से इस प्रकार भाग रही थी जैसे जानवर शिकारी से जान बचाने के लिये दौड़ रहा हो। बलवन्त को उसे पकड़ने का एक और ढंग सूझा। वह पलट पड़ी। मगर सब लड़कियां चिल्लाने लगीं। "फाउल-फाउल।" कोड़ा बलवन्त के हाथ से छीन लिया गया। श्यामा का पीछा छूटा।

कुछ देर बाद सबने उससे नूरजहां के प्रेम की कहानी सुनाने की प्रार्थना की। श्यामा कालेज में तारीख़ पढ़ाती थी। उसके पढ़ाने का तारीका कितना आकर्षक था? वह जिस किसी ऐतिहासिक व्यक्ति पर बोलती वह चलते फिरते मनुष्यों जैसा मालूम होने लगता। उसकी ज़बान मे वह मिठास और रस था कि सुनने वाले मन्त्रमुग्ध हो जाते, कालेज की बहुत सी लड़कियां केवल इसलिये इतिहास लेती थीं क्योंकि श्यामा पढ़ाती थी।

सब लड़कियां फ़िल्म 'पुकार' देख चुकी थीं। 'पुकार' की कहानी को वे नूरजहां की सच्ची कथा समझती थीं। उनकी नज़र में वह रोमांच की एक नायिका थी। लड़कियों को यह आशा थी कि मिस श्यामा उस रोमांच को नूरजहां के मकबरे के निस्तब्ध वातावरण में सुहाने रंगीले ढंग से सुना कर उनके दिलों को गुदगुदायगी, मगर श्यामा ने कुछ और ही कहना आरम्भ कर दिया। उसके कथनानुसार "पुकार" की कहानी ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित नहीं। मेहरुन्निसा और सलीम का भोले भाले लक्का कबूतरों के जोड़े से आरम्भ होनेवाला प्रेम केवल एक असत्य रोमांच कथा है। यह कहना कि जहांगीर शेर अफ़गान से

मेहरुन्निसा का पति होने के कारण प्रतिस्पर्धा रखता था, बिल्कुल ग़लत है। यह भी असत्य है कि जहांगीर ने उसका वध कराया। शेर अफ़गन विद्रोही था और उसे विद्रोही होने के कारण मृत्यु दण्ड मिला। प्रायः सब विद्रोहियों के साथ यही बर्ताव होता था। जहांगीर ने इस घटना के चार वर्ष पश्चात् तक मेहरुन्निसा से विवाह नहीं किया। यदि उसे नूरजहां से प्रेम था तो चार वर्ष तक खामोश क्यों रहा? जहांगीर जैसा व्यक्ति, एक न दो, पूरे अड़तालीस मास चैन की नींद कैसे सो सका? जहांगीर जैसा प्रेमी चार वर्ष तक विरह की आग में क्यों जलता रहा? विवाह के मार्ग में रुकावट ही क्या थी? किस तरह मान लें कि उन दोनों को परस्पर एक दूसरे से प्रेम था! कभी नहीं। यह सब लोगों की घड़न्त है।

लड़कियाँ विस्मित हो गईं। उन्हें आशा थी दिल को गुदगुदाने वाली कहानी सुनने की। वह और ही कुछ गाने लगीं। उसने उनकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। उसने एक नूरजहाँ नहीं, सारी स्त्री जाति का अपमान कर दिया। भला प्रेम के सुन्दर वर्णन के बिना नूरजहाँ की कहानी में रखा ही क्या है? इसके बग़ैर तो वह शताब्दियों पूर्व की एक रानी के जीवन की शुष्क घटनाओं का वर्णनमात्र है। नूरजहां के नाम को उसकी प्रेम कथा ही ने तो जीवित किया है। श्यामा ने तो उस कहानी को रोमांच के जादू ही से वंचित कर दिया है। बड़ी आई है इतिहासकार बनकर! अंग्रेज़ी में इतिहास की कोई नई पुस्तक पढ़ी होगी; उसमें किसी सड़ी अंग्रेज़ हिस्टोरियन ने डाक्टरी प्राप्त करने के लिये अंट-संट लिख मारा होगा कि थीसिस में आकर्षण पैदा हो जाय और वह नाम पैदा कर ले। और इन्होंने उसी धुन को अपनाना शुरू कर दिया।

सुदर्शन आगे बढ़कर बोली, "अच्छा मिस साहिबा! आओ अब चाय पियें।"

कुछ लड़कियाँ मुस्कराईं, कुछ मुंह फेर कर हँसीं, चाय शुरू हो गई। परन्तु श्यामा ने ज्योंही प्याली उठाई उसे अपने बीते जीवन की तस्वीर उसमें तैरती हुई नज़र आने लगी। उसमें कोटले के सुहाने खेल के साथ-साथ अल्हड़ जवानी की बदमस्तियों की हल्की-हल्की रेखायें भी थीं, जीवन के बीते हुये लमहों में से हर लमहा एक गीत था जिसकी हर अलाप में हज़ारों आहे सरसरा रही थीं। उसकी हर लहर में कितने गरदाब बल खा रहे थे! उसकी लम्बी लम्बी घड़ियों में कितनी पूर्णमाशियाँ और कितनी 'अमावसें मुरझाई पड़ी थीं। और कितने सावन! कितनी वसंत ऋतुयें!!

वह उन दिनों ज़िंदादिली की एक तस्वीर बनी रहती थी। रोतों को हँसाती और रूठे हुओं को पल में मना लेती। वह अपने मीठे गीतों से दिलों को लुभाती। उसके होंठों पर हर समय मुस्कान नाचती और आँखों में शरारत। जब वह शरारत पर उतरती किसी को भी न छोड़ती। प्रिंसिपल तक को भी नहीं।

उस दिन वह कालेज की अन्य लड़कियों के साथ फाइन डे मनाने यहाँ आई थी। जवान दिलों को यह क्या मज़ाक सूझा करता है कि मक़बरों पर जाकर रंग रलिया मनायें!! मगर यही तो है यौवन जो मृत्यु को भी ललकारता है। उसका भी उपहास उड़ाता है।

"कोटला छुपाकी" में उसने उस दिन मिस बोस को इतने कोड़े लगाये कि वह बेदम होकर गिर पड़ी। लड़कियों ने खिलखिला कर ताली पीट दी और इतनी हँसीं, इतनी हँसी कि हँसते-हँसते उनके पेट में बल पड़ गये..................उस समय उसकी नज़र एक ओर को उठी। एक लड़का एक पेड़ के नीचे खड़ा यह तमाशा देख रहा था। श्यामा उसे इस तरह खड़े देखकर मन में बहुत बिगड़ी, परन्तु खामोश रही..............फिर उसकी सहेली पद्मा बातों-बातों में उसे एक तरफ ले गई और एक झाड़ी के पास ले जाकर बिठा दिया। वहाँ

वह लड़का भी आ गया। श्यामा उठने लगी तो पद्‌मा ने हाथ पकड़ कर बिठा लिया। अरे! भागने का कोई कारण भी? यह तो मेरा छोटा भाई है सुरेशचन्द्र। ला कालेज में पढ़ता है। मित्रों के साथ रावी की सैर को आया था। वे चले गये। यह इधर निकला, यों ही फिरता फिरता। श्यामा ने झिझकते २ उसकी ओर देखा, कितना सुन्दर! कितना जवान! लम्बा क़द, छरेरा शरीर, सुरमई आँखें! घुंघराले बाल!!!

मुलाकातें होने लगीं। मिलने जुलने में कोई ख़ास मुश्किल भी पेश नहीं आई। सुरेशचन्द्र उस की सहेली का सगा भाई था। सहेली के घर जाने से उसे कौन रोक सकता था?

गर्मियों की छुट्टियां आईं। हास्टल खाली होने लगा। श्यामा ने अपने दिल से पूछा। घर जाऊँ या न जाऊँ? पिता जी के पत्र पर पत्र आ रहे थे। मगर............सुरेश और उसकी मुलाकातें? पिता जी को टालने में कोई कठिनाई पेश नहीं आई। उसने लिख भेजा कि छुट्टियो के बाद ही परीक्षा है, मैं अंग्रेज़ी और एकनामिक्स में पहले ही कमज़ोर हूँ। घर आई तो अब तक का पढ़ा लिखा भी सब भूल बैठूंगी। यहां रहूँ तो ट्यूटर से पढ़ सकती हूँ। प्रोफेसर सुरेशचन्द्र कमज़ोर विद्यार्थियों की कमी पूरी कराने में बड़े माहिर हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि प्रिंसिपल के कहने सुनने और अनुरोध करने पर मुझे पढ़ाने पर राज़ी हो गये हैं, नहीं तो अभी कुछ दिनों की बात है कि उन्होंने वित्त मन्त्री की इकलौती बेटी की ट्यूशन लेने से साफ़ इन्कार कर दिया था। पिता जी ने लिखा कि यदि यह विषय इतना कठिन है तो इसके बजाय हिन्दी क्यों न ले ली जाय? उसने उत्तर में लिख भेजा कि ट्यूशन फिर भी ज़रूरी होगी।

प्रिंसिपल को उसने फ़ादर का वह पत्र जा दिखलाया जिस में प्रो० सुरेशचन्द्र की सेवायें प्राप्त करने की आज्ञा दी गई थी। प्रिंसिपल ने

भी इजाज़त दे दी। ट्यूशन शुरू हो गई। हास्टल में तीन चार लड़कियां रह गई थीं और दो तीन नौकरानियां। श्यामा ने पढ़ने के लिये कामन रूम ही बेहतर समझा। यह जगह सब से अलग थी। पढ़ने के लिये ऐसी ही जगह होनी भी चाहिये। प्रोफ़ेसर साहिब, प्रातः ही, पुस्तक सम्भाले आ जाते। परन्तु बहुधा वह किसी और ही विषय की पुस्तक निकलती। कभी दूसरी कक्षा की भूगोल, कभी सातवीं का हिसाब। एक बार तो प्रोफेसर साहिब धोबी के हिसाब की कापी ही उठा लाये जिस पर दोनों खूब जी खोल कर हंसे।

"आज क्या पढ़ाइयेगा, प्रो० साहिब?" वह बड़ी गम्भीरता से पूछने लगी।

"एक्नामिक्स" प्रो० सा० ने उत्तर दिया।

"इसी पुस्तक से? क्या यह मार्शल की पुस्तक है?"

"नहीं, उसके बाप की।" और दोनों हंस पड़े।

"आपको कैसे पता चला कि मार्शल का बाप धोबी था?" वह हंसी रोकते हुये पूछने लगी।

"देखिये!" प्रो० साहिब संजीदगी से बोले, "पढ़ाई के समय व्यंग नहीं चलेगा। मैं ने जो कुछ कहा है, बिल्कुल ठीक कहा है।"

"किस तरह?"

"एक्नामिक्स में धोबी का हिसाब भी शामिल है। तुम स्त्रियों को यह काम नहीं आता।"

"हम स्त्रियां यह काम करना भी नहीं चाहतीं। हमें इससे कोई रुचि ही नहीं।"

"क्यों।"

"यह काम बनियों का है।"

"तुम बड़ी नटखट हो।"

दोनों फिर हंसने लगे। कामन रूम की दीवारें भी उनकी इस हंसी में उस समय तो शामिल मालूम होतीं। मगर सुरेश के चले जाने के बाद वे सीमेंट की जड़ी हुई बेजान ईंटें नज़र आने लगतीं। एक यह दीवार ही क्या, सारा हास्टल कब्रिस्तान दिखाई देता और बची खुची तीन-चार लड़कियां और नौकरानियां चलती फिरती क़ब्रें। वह जिंदा रहना चाहती थी, इसलिये वहीं पहुँचती, जहाँ जिन्दगी थी। पद्मा के घर।

सुबह उठते ही नहा धोकर खूब शृंगार करती और अत्युत्तम साड़ी अथवा सूट पहनती। काजल लगाने में वह कितनी निपुण थी। वह काजल की लकीर को तलवार की धार से भी अधिक तेज़ बनाने की कोशिश करती ताकि सुरेश को और भी घायल कर सके।

हास्टल में उसका दिल ही नहीं लगता था। बसंत में खिलने वाले वे फूल ही न दिखाई देते, न सब्ज़ा। झुलसी हुई घास ही घास होती और सब ओर उदासी ही उदासी। अन्दर भी, बाहिर भी, सड़कों पर भी। क्या अजीब ऋतु होती थी। बाज़ार भी बेरौनक़ नज़र आते। रौनक और दिल लगने का कहीं सामान था तो बस सुरेश के घर पर। उसे वहीं चैन मिलता। मगर एक दिन उसने सोचा, यह खेल इस प्रकार कब तक जारी रह सकता है। ज़्यादा से ज़्यादा छुट्टियों तक। छुट्टियां तो समाप्त हो ही जायंगी। फिर? वह कांप उठी। तो क्या फिर मिलना-जुलना बन्द हो जायगा? क्यों? इसमें क्या बुराई है? दुनिया इसे अच्छी नज़र से नहीं देख सकती। अजी बस दुनिया! दुनिया!! दुनिया!!! जैसे दुनिया ही सब कुछ है, हम कुछ नहीं। हमारी पसन्द ना-पसंद कुछ भी नहीं। हमारे दिल, हमारी भावनाओं का कोई अस्तित्व नहीं। यह कौन है बाहिर? वह आये हैं क्या? वह लपक कर बाहिर निकली। परन्तु वहाँ कोई नहीं था।

"मिस साहिबा, चाय", चन्दन ने उसे अतीत के स्वप्न से जगा दिया।

चाय का दूसरा दौर शुरू हो चुका था। कुछ लड़कियाँ चाय पीकर घास की क्यारी में जा बैठी थीं और वहाँ बैठकर माहिया गा रही थीं। शेष सब भी अपनी अपनी प्याली खत्म करके वहीं पहुँच गईं। श्यामा को भी उनके साथ जाना पड़ा। लड़कियों ने दो टोलियाँ बनाकर मुका-बले पर माहिया गाना शुरू कर दिया।

"मेरिया वे माहिया जे मुण्डे एथे आवनगे
सैंडल खोल असी उन्हां दे सिरां ते चढ़ावांगे।"

सब लड़कियों ने मिलकर अट्टहास किया जो फ़िज़ां को चीरता हुआ शहर की ओर भाग चला, जैसे लड़कों को सूचित करने ही जा रहा हो। वे डटकर माहिया गाने लगीं। वे कितनी उमंगों से गा रही थीं। यह भी प्यार भरे दिल से सुरेश के प्रेम के गीत गाया करती थी। हर समय उसी के ध्यान में मग्न रहती थी। क्या उसे भी मेरा इतना ही ध्यान है? एक दिन उसने अपने से पूछा, उसकी बातों और आँखों से तो यह मालूम होता है कि उसे जरूर है। उसने सुरेश से पूछने का फ़ैसला कर लिया।

लेकिन दूसरे ही दिन उसे बुखार ने आ दबाया और कई दिन तक पीछा न छोड़ा। उन दिनों न सुरेश पढ़ाने आया, न पद्मा मिलने आई। क्या उन दोनों को उसकी बीमारी की खबर नहीं? चपरासी को भेजकर खबर करा देनी चाहिये। तबियत ज़रा ठीक होने पर वह स्वयं उन के घर जायगी।

दो दिन बाद वह सुरेश और पद्मा के दरवाज़े पर पहुँची तो तो..........ठन.............न........न...........। उसके दिल के तार जैसे एकदम बज उठे। दरवाजे पर ताला लगा था। मालूम हुआ मकान ख़ाली किया जा चुका है।

सुदर्शन की आवाज़ ने उसे चौंका दिया। सुदर्शन तालियाँ बजा-बजाकर चिल्ला रही थी,

"अब प्रो० श्यामा माहिया सुनायेंगी।"

अरे प्रो० श्यामा की आँखों में आँसू !!! लड़कियाँ खड़ी की खड़ी रह गईं।

वह सिर के दर्द का बहाना करके एक ओर जाकर लेट गई। माहिया बन्द हो गया।

सब लड़कियाँ सुदर्शन के सिर हो गईं। जब सारी बात मालूम है तो क्यों उनसे माहिये के लिये कहा।

"बेचारी मिस श्यामा ! जानती हो उन्हें सताने वाली को क्या दण्ड निश्चित हो चुका है?" आशा ने उसे डांटा।

सुदर्शन अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगी। श्यामा एकांत चाहती थी। सब लड़कियाँ दूर हट गईं। सुदर्शन उसका सिर दबाने लगी। श्यामा की आँखें बंद हो गईं और उनके पर्दे पर अतीत के चित्र फिर उभरने लगे; सुरेश से उसकी भेंट फिर कभी नहीं हुई। उसने कोई पत्र भी नहीं भेजा। हाँ पद्मा का एक पत्र आया था, "हम लोग अचानक कलकत्ता आ गये थे। कुछ ही दिन बाद भैया की शादी एक बड़े धनी परिवार में हो गई। भाभी बड़ी सुन्दर है और उसके माता पिता ने बहुत भारी दहेज दिया है। भैय्या बहुत प्रसन्न हैं। दरअसल यह विवाह उन्होंने अपनी पसन्द ही का किया है।"

"मिस साहिबा, उठिये।" शेख की आवाज ने उसे चौंका दिया। "घर चल रहे हैं।"

जय शंकर

३

जय शंकर

गाड़ी में बैठते ही इतमीनान का लम्बा सांस लिया और अपने चारों ओर नजर दौड़ाई। मेरे साथ वाली दो लम्बी बर्थ को एक बाबू साहब, उनकी पत्नी और उनके छः बच्चे सम्भाले हुए थे। बड़े बच्चे की उमर कोई नौ वर्ष की होगी और सबसे छोटे की छः मास की। बाबू साहब की शकल से उनकी उमर का अंदाज़ा लगाना मुश्किल था। वह अपनी श्रीमतीजी से इस प्रकार बातें कर रहे थे जैसे दो प्रेमी वर्षों बाद मिले हों, वे दोनों बातों में इतने व्यस्त थे कि उन्हें अपनी ओर देखती हुई दूसरी आंखों की परवा तक न थी।

एक सीट पर एक नंगे साधु बैठे थे, जो शंकर का नाम जप रहे थे। उनके पास बैठे हुए एक व्यक्ति गाड़ी में चढ़ते हुए प्रत्येक मनुष्य को टोकते, "साहब, यह तीन सौ मील वाला डिब्बा है।" कुछ लोग तंग आकर कह देते, "क्या हमें नहीं दीखता जो तू इतना चिल्ला रहा है?" और वह इस उत्तर से घबराने के बजाए अपने वाक्य को दोहराता रहता। बीना पहुँचने पर टिकट-चेकर ने उसे बिना टिकट सफ़र करने और टिकट के लिए पैसे न दे सकने के अपराध में पुलिस के हवाले कर दिया था।

एक बेहद दुबले शरीर वाले सरदारजी पूरी सीट पर लेटे हुए ऐसे मालूम दे रहे थे जैसे सीट पर कपड़ों में लिपटा बांस पड़ा हो। उन के कपड़े बहुत गंदे थे जैसे सिलने के बाद उन्हें धोया नहीं गया था। उन की आंखों पर चश्मा लगा था जैसे दुबले शरीर और गंदे लिबास को छिपाने का हास्यास्पद प्रयत्न हो।

सरदारजी के सामने वाली सीट पर एक भारीभरकम लालाजी बैठे थे, जिनकी लाश कम-से-कम तीन मन की और कद साढ़े छः फुट का था। उनके दोनों ओर खरबूजे पड़े थे। कभी-कभी जब नंगे बाबा 'शंकर शंकर' उच्चारण करते, तो लालाजी खरबूजे की एक फांक काट कर बाबा को दे देते। तब सरदारजी चश्मा उतार कर लेटे-लेटे लालाजी की ओर आंख उठा कर देखते। उनकी आंखों के रोब में आकर अथवा नजर बन्द से बचने के विचार से वह एक फांक सरदारजी की ओर बढ़ा देते। वह उसे इस प्रकार पकड़ते जैसे हक़ की कमाई हो। फिर उसका सफाया करते, और आस्तीन से मुंह पोंछ कर, चश्मा आँखों पर लगा कर लेट जाते।

गाड़ी चली तो मैं एक पुस्तक पढ़ने लगा। अभी पहला पृष्ठ समाप्त न कर पाया था कि सरदारजी और लालाजी की पारस्परिक बहस ने मुझे अपनी ओर आकृष्ट किया। वे भारत की राजनीतिक स्थिति पर विचार-विमर्श कर रहे थे।

"मैं यह पूछता हूँ कि आजादी मिलने के बाद हमें क्या सुख और आराम मिला?" सरदारजी ने पूछा।

"सरदारजी," मोटे लालाजी ने उत्तर दिया, "आजादी मेरे और आप के नहीं, नेताओं के सुख आराम के लिए मिली है, आखिर त्याग भी तो उन्होंने ही किया है!"

"जय शंकर!" नंगे बाबा जोर से बोले।

मोटे लालाजी ने तुरन्त ख़रबूजे की एक फांक चाकू से काट कर बाबाजी की ओर बढ़ाई, जो उन्होंने निस्संकोच स्वीकार कर ली। सरदार

जी ने चश्मा उतार कर खरबूजों के मालिक की ओर देखा, और लाला जी ने दूसरी फांक सरदारजी की ओर बढ़ाई। सरदारजी ने उसका एकदम सफाया किया, छिलके को गाड़ी के फरश पर फेंका, कमीज के दामन से हाथों को और आस्तीन से मुंह को पोछा, चश्मा आंखों पर लगाया और सीट पर दराज हो गए।

"बाबाजी, आप ने ईश्वर के दर्शन किए हैं?" लालाजी ने राजनीति का सहारा छोड़, धर्म की शरण लेते हुए कहा।

"शंकर! शंकर!"

"क्यों, बाबाजी, दर्शन किए हैं?" सरदारजी ने लेटे-लेटे, छत की ओर देखते हुए बाबाजी से पूछा।

"शंकर! शंकर!" नगे बाबा ने फिर कहा।

"मां, भूख लगी है!" एक बच्चे की आवाज आई।

"मां पानी पिऊंगी!" छोटी लड़की बोली।

"मां, पेशाब कहां करूं?" सरदारजी के ऊपर वाली सीट पर लेटे हुए एक बच्चे ने पूछा।

"लड़के, यहीं मत कर देना?" सरदारजी ने रोब जमाते हुए कहा।

बच्चा चुप हो गया, उसकी मां पति से बातों में व्यस्त रही। बाबू साहब ने बच्चों की बातों पर ध्यान ही नहीं दिया।

"अरे मुए, यह क्या कर दिया!" मां ने गोदी के बच्चे को उठाते हुए कहा।

"क्या टट्टी कर दी?" बाबूजी बच्चे को पकड़ते हुए बोले।

"और कर ही क्या सकता था! आपके बच्चों की भी आदत अच्छी नहीं," श्रीमतीजी तिलमिला कर बोलीं।

"नाराज़ क्यों होती हो! बड़ों को समझ नहीं होती, यह तो बच्चा है।"

"अच्छा, अच्छा, आपको बहस करने के सिवा कुछ और भी आता है ? पानी क्या कोई और देगा ?"

बाबूजी ने उठकर श्रीमतीजी को पानी दिया। उन्होंने बच्चे को धोया। गंदा पानी डिब्बे में तैरने लगा।

"उई ! यह क्या कर दिया !" सहसा श्रीमतीजी चिल्लाईं।

"क्या हुआ ?" बाबू साहब ने घबराकर पूछा।

"आपकी सिगरेट ने तो मेरी गरदन ही जला दी," वह गरदन को हाथ से मलती हुई बोलीं।

बाबू साहब ने सिगरेट वहीं फ़रश पर फेंक दी।

"बाबू साहब, इसे बुझाकर क्यों नहीं बाहर फेंकते ?" सरदार जी बोले।

"बुझा तो देता हूँ, लेकिन जगह तो यह भी कुछ बुरी नहीं।"

"बुरी नहीं ? जैसे बाप की हो !" सरदारजी ने मन ही मन कहा।

"जय शंकर !" नंगे बाबा बोले।

सरदारजी ने मोटे लालाजी की ओर देखा। वह मज़े से सो रहे थे। सरदारजी ने उन्हें छड़ी से हिलाते हुए कहा, "सुना नहीं, बाबा ने जयशंकर कहा है ?"

"सुन नहीं सका—सो रहा था।"

सरदारजी को खरबूजे से वंचित रहने का अफसोस हो रहा था।

इतने में गाड़ी झांसी स्टेशन पर रुकी। सूटबूट पहने एक सज्जन डिब्बे में आए। उन्होंने अपना बैग नीचे रखा। कुली से बिस्तर सरदार जी के ऊपरवाली सीट पर, जहाँ बच्चा बैठा था, रखने को कहा।

"आप देख नहीं रहे कि यहां बच्चा बैठा है और आप बिस्तर रखवा रहे हैं," बाबू साहब बोले।

"बिस्तर ही है, कोई सांप तो नहीं," नवागंतुक ने फौरन उत्तर दिया। उसके बात करने के ढंग से पता चल रहा था कि वह सिंधी है।

"सांप काटे तुम्हें !" श्रीमतीजी ने सिंधी बाबू को संबोधित करते हुए कहा।

"मना कौन करता है ? काटे भी तो," सिंधी बाबू बोले !

श्रीमती ने क्रोध बच्चे पर निकाला—उसके मुंह पर एक तमाचा जड़ दिया, और बोलीं, "मुए को जब देखो भूख ही लगी रहती है। नदीदा कहीं का !"

बच्चे ने जोर से चीख लगाई। इतने में सिंधी बाबू अपनी सीट पर जम गए और मुझे संबोधित करके बोले :

"दिल्ली जा रहे हैं ?"

"मैं या आप ?" मैंने पूछा।

"आप। मैं तो जा ही रहा हूँ," वह बोले।

"कुशल तो है ?"

"फिर वहां जाने की क्या जरूरत थी ?"

"अब क्या जरूरत है ?"

"नेहरूजी से कहने जा रहा हूँ कि आप प्रांतीयता के विरुद्ध जितना कह रहे हैं, वह उतनी ही बढ़ती जा रही है।"

"बात क्या है ?" मैंने उनसे पूछा।

"बात यह है कि मुझे नौकरी से केवल इसलिये निकाल दिया गया है कि मैं सिंधी हूँ, और एक विशेष जाति तथा वर्ग से संबन्ध नहीं रखता।"

"परन्तु आजकल तो लोगों की योग्यता देखी जाती है," मैंने कहा।

"कहा ऐसा ही जाता है।"

"आपके विरुद्ध कोई शिकायत होगी," मैंने पूछा।

"शिकायत" वह व्यंग्य की हंसी हंसकर बोले। "शिकायत किसके विरुद्ध नहीं हो सकती। फिर शिकायत पैदा नहीं होती, पैदा की जाती है।"

"वह कैसे ?" मैंने हैरान होकर पूछा।

"कैसे !" वह बोले, "यदि कोई व्यक्ति आपका विरोध करने पर तुल जाए और पैसे खर्च कर दो चार गैर-जिम्मेदार अखबारों को अपने साथ मिला ले और गलत-सलत प्रचार शुरू कर दे जिसका सरकारी नौकर होने के कारण आप उत्तर न दे सकें, तो लोग अपने आप समझने लगेंगे कि आप बहुत बुरे आदमी हैं। और यदि आपका अफसर भी प्रांतीयता या वर्गीयता के कारण आपको पसन्द नहीं करता, तो वह निस्संदेह आपसे छुटकारा पाने में आनन्द अनुभव करेगा। क्या यह स्थिति हमारे प्रजातंत्र के लिए खतरनाक नहीं ?"

"तो कोई आपके भी विरुद्ध हो गया था ?"

"या मैंने कर्त्तव्यपालन करते हुए विरोध मोल ले लिया था।"

"कैसे ?" मैंने पूछा।

"मैं पुलिस का सबइंस्पेक्टर था………"

"कहां ?" मैंने उन्हें टोक कर पूछा।

"कहीं भी। और मुझे एक सिपाही के विरुद्ध, लगातार काम न करने और गैरहाजिर रहने के कारण, उसे मुअत्तल करना पड़ा। अपनी सफाई देने के लिए उसे अवसर और समय दिया गया। उसके भाई ने जो एक विभाग में साधारण क्लर्क है, लेकिन एक अधिकारी का सम्बन्धी होने के नाते सबके मुंह लगा हुआ है, मेरे पास आकर उसकी सिफारिश की। मेरे न मानने पर उसने एक स्थानीय पत्र के सम्पादक को खरीद कर और मेरे एक प्रतिद्वन्द्वी सबइंस्पेक्टर की शह पर मेरा

विरोध शुरू कर दिया। प्रति सप्ताह अखबार में एक पृष्ठ पर मुझे गाली मिलती। मेरे आचरण पर खूब हमले होते। मुझे बाहर का आदमी कहकर उस शहर से निकाले जाने को कहा जाता। मेरे काम के बारे में और मेरे निजी जीवन के विषय में ऐसी बातें लिखी जातीं जो मैं भी नहीं जानता था। दूसरे पत्रों को जब मैंने रिश्वत देने से इनकार कर दिया तो वे भी मेरे शत्रु बन गए।"

"अधिकारियों ने इस पर कुछ नहीं किया?" मैंने कुतूहलवश पूछा।

"क्यों नहीं किया!" सिंधी ने उत्तर दिया। "उन्होंने मेरे विरुद्ध जांच शुरू की। मेरी सफाई को सुने और माने बगैर, सारी बात में मेरा ही दोष मानकर मुझे नौकरी से निकाल दिया।"

"आप वहां के नेताओं से मिले होते!"

"नेता!" वह आह खींचकर बोला। "जिन्हें स्वयं मार्ग नहीं मिलता, वे दूसरों को मार्ग क्या दिखायेंगे! वहां के तथाकथित नेता भी मेरे विरुद्ध हो गए और एक बाहर के व्यक्ति को अपने शहर से निकालने की मांग करने लगे।"

"बाहर के आदमी से क्या मतलब?" मैंने पूछा, "आप तो शरणार्थी हैं और सरकारी नीति के अनुसार उन्हें विशेषता मिलनी चाहिये।"

"सरकार तो ठीक कहती है, पर नेता लोग सरकारी अफसरों की चलने ही कब देते हैं! हर रोज दफ्तरों के बाहर जीप, कार, टांगे और साइकिलों का जमघट लगा रहता है और दफ्तरों के अन्दर नेताओं का। अब बेचारे अधिकारी भी क्या करें! वे उनकी बात को कहाँ तक टाल सकते हैं। उन्हें भी तो नौकरी प्यारी है!"

"यह पेट बुरी बला है," सरदारजी बोले।

"जय शंकर!" बाबाजी बोले। "भगवान सब ठीक करता है।"

"कहां ठीक करता है!" सिंधी बाबू जल कर बोले। "पहले तो

हमारा घरबार छिना और अपने ही घर से धक्के मिले, अब नौकरी भी छिन गई और बाहर का आदमी कह कर हमें निकाल भी दिया गया।"

"हिन्दुस्तान की तबाही हमेशा इसलिये हुई है कि यहां प्रांतीयता का विष भरा रहा है," सरदारजी बोले ।

"यहां भाई का भाई शत्रु है," मोटे लालाजी ने खरबूजे की फांक बाबाजी की ओर बढ़ाते हुए कहा ।

"लेकिन शुक्र है तेरा सतगुरु कि इस जमाने में भी आप जैसे धर्मात्मा मौजूद हैं," सरदारजी ने अपना हिस्सा सम्भालते हुए कहा ।

"माफ करना, मैं जरा पेशाब कर आऊं," सिंधी बाबू सीट पर से उठते हुए बोले ।

"इस में माफी मांगने की क्या जरूरत है ?" सरदारजी छिलके को गाड़ी के डिब्बे में फेंकते हुए बोले ।

संडास का दरवाजा खोलते ही सिंधी बाबू उसे तुरन्त बन्द करके ऐसे भागे जैसे वहां काला नाग डसने को बैठा हो ।

"बाबू साहब, क्या हुआ ?" मैंने घबराकर पूछा ।

"तोबा ! वहां तो इतनी गंदगी है जैसे पिछले मास से भंगी ने सफाई ही न की हो।"

"यह सब बाबूजी की कृपा है," सरदारजी बोले ।

"अकेले इन बेचारे से क्या हो सकता है—सारा कुटुम्ब साथ है।" लालाजी ने कहा ।

"खैर, कुटुम्ब के लिए तो डिब्बा पर्याप्त है," मैंने कहा ।

गाड़ी रुकी और एक टिकट चेकर डिब्बे में आया । उन्हें देखते ही सिंधी बाबू उन पर झपटे, जैसे बाज शिकार पर ।

"आप केवल टिकट चेक करते हैं या यात्रियों के आराम का भी ध्यान रखते हैं ?"

"मुझे पैसे केवल टिकट चेक करने के मिलते हैं," वह तुरन्त बोला। "खैर, आपको क्या कष्ट है ?"

"मुझे नहीं, सारे यात्रियों को है। जरा संडास में जाकर देखिए।"

टिकट चेकर फौरन कान पकड़ कर बोला, "बाबूजी, अपनी इज्जत सब को प्यारी होती है। आदमी किस-किस से लड़े !" फिर बाबू साहब और उनकी पत्नी की ओर देख कर बोले, "ये लोग बच्चों को भी नहीं समझाते, और शायद स्वयं भी नहीं जानते कि संडास का इस्तेमाल कैसे किया जाता है।"

"लेकिन जब से गाड़ी बम्बई से चली है, क्या कोई मेहतर आया है इस डिब्बे में ?" बाबू साहब ने पूछा।

"सो तो ठीक है, वह तो किसी डिब्बे में भी नहीं आता जब तक उसे पकड़ कर न लाया जाय और इनाम न दिया जाय।" टिकट चेकर ने उत्तर दिया।

"परन्तु उसे सफाई करने की तनखाह जो मिलती है।" सरदारजी बोले।

"सरदारजी यह स्विट्जरलैंड नहीं, हिन्दुस्तान है। यहां केवल तनखाह से किसी का काम नहीं चलता, ऊपर की कमाई सब से जरूरी है।"

"और ऊपर की सफाई ?" सिंधी बाबू बोले।

"वाहगुरु, तेरी दुहाई !" सरदारजी लेटे-लेटे बोले।

सरदारजी की बात से सब खामोश हो गए। टिकट चेकर अपना काम करने लगा, सिंधी बाबू की बातों ने सोचने का काफी मसाला प्रदान किया था। इतिहास आंखों के सामने तैरने लगा। हमारे स्वार्थ,

संकीर्णता और पक्षपात ने हमें कितनी बार विदेशी आक्रमणकारियों के आगे झुकने और गुलाम बनने पर विवश किया। अशोक के बाद आज पहली बार हमें फिर सच्चे अर्थ में स्वतंत्रता नसीब हुई है। अवसरवादी नेता निःस्वार्थ सेवा से अनभिज्ञ हैं। लोगों को अपने स्वार्थ के अलावा कुछ और नजर ही नहीं आता, हम उसी तरह प्रांतीयता के विष से भरे पड़े हैं, वर्गीयता के भाव से प्रभावित है, धार्मिक पक्षपात की भट्टी में जल रहे हैं। हमारे देश में अगर कोई वस्तु आसानी से मिलती है तो वह है आपसी द्वेष—भाई भाई में, घर घर में, प्रांत प्रांत में, इनसान इनसान में। अगर किसी वस्तु का आकाल है तो वह है मानवता। कैसे भला होगा इस देश का ? कौन बचा सकता है इसे ?

"रोटी ! आलू ! चने !" प्लेटफार्म से आवाज आई।

मुझे ध्यान आया कि खाने का समय हो गया है। मैं अपने साथ खाना लाया था। उसे खोल कर देखा तो मेरे अकेले के लिए वह ज़्यादा था। मैंने दान देकर पुण्य कमाने की सोची। बाबाजी की ओर देख कर बोला :—

"बाबाजी, आप रोटी खाएंगे ?"

"और क्या बाबाजी केक खाएंगे ?" सरदारजी गाड़ी की छत की ओर देखते हुए बोले।

"जय शंकर !" बाबाजी ने मेरी ओर हाथ पसारते हुए कहा।

मैंने एक परांठे पर सब्जी रख कर उन की ओर बढ़ा दी। सरदार जी ने फौरन मोटे लालाजी की ओर देखा, लेकिन उन्होंने सरदारजी से आंख न मिलाने ही में बेहतरी समझी। तंग आकर सरदारजी बोले :—

"लालाजी, क्या बाबाजी को खरबूजा नहीं देंगे ?"

"सरदारजी, मैंने सोचा कि कुछ अपने लिए भी रख छोड़ूं व्रत खोलने पर क्या खाऊंगा ?"

"कब खोलेंगे व्रत आप ?"

"सुबह !"

"सुबह ? अगर अब खोल लेते तो अच्छा होता ।"

सरदारजी प्लेटफार्म पर उतर कर चने वाले के पास पहुँचे । चार पैसे के चने लिए । वह तोलने लगा तो बोले, पैसे तो लिए चार और चने दिए केवल दो के, शहर में इस से तिगुने आ जाते हैं !"

"गांव में चौगुने आ जाते हैं," चने वाला बोला ।

"अरे, कभी गांव देखा भी है ?" सरदारजी ने ताने से कहा ।

"जहाँ आप जैसे गंवार बसें वही गांव है ।"

"जरा होश से बोल । तू जानता नहीं किस से बात कर रहा है ?"

"तीसमारखाँ से," चने वाला बोला

"अच्छा, अच्छा, थोड़े चने और दे । गाड़ी चलने वाली है ।"

"लो महाराज, और आप भी चलते बनो ।

मैं सीट पर लेट कर सोने का प्रयत्न करने लगा ।

एक घण्टे बाद अचानक आंख खुली तो ऐसा लगा जैसे दंगा हो रहा हो । डिब्बे में से भिन्न-भिन्न आवाजें आ रही थीं । मोटे लालाजी तुलसीदास की चौपाइयां पढ़ रहे थे । नंगे बाबा जय शंकर की रट लगा रहे थे । सरदारजी जपजी का पाठ पढ़ रहे थे । सिंधी बाबू एक फिल्मी गाना गा रहे थे, और बाबू साहब श्रीमती से घुलमिल कर बातों में व्यस्त थे । अब मैं किस-किस को चुप कराऊं ? अच्छा यही था कि स्वयं ही चुप रहूँ ।

इस तरह सोते-जागते, उठते-लेटते, सबेरा हो गया । मैं भी उठकर बैठ गया । देखा तो दस बारह व्यक्ति संडास के दरवाजे के बाहर खड़े हैं । कुछ दातुन ऐसे चबा रहे थे जैसे कई दिन के भूखे हों । दातुन को मुंह से निकाल कर कमरे के अन्दर सीट के साथ झाड़ते और फरश पर थूक देते ।

बाबू साहब धीरे-धीरे श्रीमतीजी को जगा रहे थे कि दिल्ली करीब आ रही है। बच्चे और चीजें बिखरी पड़ी हैं। श्रीमतीजी उनकी ओर घूर-घूर कर देख रही थीं जैसे कह रही हों—आप किस मर्ज की दवा हैं! क्या आप से इतना भी नहीं हो सकता!

"जय शंकर!" बाबाजी ने जागते हुए आवाज लगाई।

"लालाजी!" सरदारजी ने आवाज दी।

"सरदारजी अब तो मैं घर जाकर ही व्रत तोड़ूंगा," लालाजी बोले।

"गाड़ी में क्यों नहीं तोड़ते? यहां आपको मदद मिल जाती।"

"इसीलिए तो नहीं तोड़ रहा।"

"वाहगुरु सब को देता है।" वह आह छोड़ कर बोले।

"जय शंकर! जय शंकर।"

और गाड़ी दिल्ली स्टेशन पर आ कर रुक गई।

वह अंग्रेज़ महिला

४

वह अंग्रेज महिला

उस दिन हमारे स्कूल में उदासी छाई हुई थी। जलियांवाला बाग की घटना का वृत्तान्त पत्र-पत्रिकाओं में छप चुका था और हमारे मास्टर साहब ने क्लास रूम में इसका वर्णन किया था। परन्तु कुछ देर में यह उदासी रोष में परिवर्तित हो गई जब एक लड़के ने स्कूल में आकर यह खबर उड़ाई कि फ्रण्टियर मेल में एक गोरा और उसकी पत्नी सफर कर रहे हैं तो लड़के, स्कूल को छोड़कर स्टेशन की ओर भागे। मुख्याध्यापक तथा अन्य अध्यापकों ने हमें रोकने की कोशिश की परन्तु व्यर्थ। हम क्रोध से पागल हो रहे थे।

मेरा घर मार्ग में पड़ता था। मुझे कुछ सूझी और पिछले दरवाजे से मैं घर के अन्दर घुस गया। पिता ज़ी दफ्तर गये हुये थे, माताजी रसोई घर में थीं, नौकर लोग अपने-अपने काम में संलग्न थे। किसी ने मुझे घर में घुसते नहीं देखा। मैं पिताजी के कमरे में गया। एक कोने में राइफल पड़ी थी। मैंने ट्रंक में से कारतूस निकाल कर उसमें भरा और सब की नजर बचाकर पिछले दरवाजे ही से बाहर आ गया। दो साथियों को मैं बाहिर छोड़ गया था। हम तीनों स्टेशन की ओर तेज़ी से भागे।

स्टेशन पर लड़कों की खासी भीड़ जमा हो गई थी और लड़के फर्स्ट क्लास के एक कम्पार्टमेंट को घेरे खड़े थे। मैंने एक लड़के के कान में कुछ कहा। वह तुरन्त डिब्बे में घुस गया। उसके पीछे दूसरे लड़के भी चले गये। मैं तथा अन्य लड़के बाहिर प्लेटफार्म पर खड़े थे। कम्पार्टमेंट के अन्दर लड़कों की भीड़ ने ऊधम मचा दिया। उन्होंने गोरे के सामान को उठाकर खिड़की के रास्ते बाहर फेंकना और बाहर खड़े लड़कों ने उसे जलाना प्रारम्भ कर दिया। बिस्तर, ट्रंक, अटैचीकेस, हैट, एक-एक करके अग्नि की भेंट कर दिये। कम्पार्टमेंट के अन्दर गोरे और लड़कों में हाथापाई हो रही थी। कुछ दस मिनट पश्चात् लड़कों ने धक्का मारकर गोरे को खिड़की से बाहर आने पर विवश कर दिया। उसे प्लेटफार्म पर धक्का देकर लड़के एक ओर को हट गये। वह मुंह के बल प्लेटफार्म पर गिर पड़ा। ज्योंही वह खड़ा हुआ, मैंने निशाना बांधकर उस पर एक फायर कर दिया। मुझे यह नहीं पता लगा कि गोली उसके कहां लगी। गोली खाते ही वह गिर पड़ा। उसके शरीर से रक्त बहने लगा।

गोली की आवाज सुनते ही उसकी पत्नी संडास का दरवाजा खोल कर, एक छोटे बच्चे को गले से लगाये, बाहर निकलीं और तेजी से बाहर प्लेटफार्म पर आ गई। अपने पति को इस अवस्था में देखकर जोर से चीख लगाई और अपने बाल नोचने लगी।

इतनी देर में मेरे पिता जी के एक मित्र मेरे हाथ से राइफल छीन कर ले गये।

"मारो! क्या देखते हो?" लड़कों की आवाज बुलन्द हुई।

उनकी ललकार सुनकर प्रेम ने अपनी निगाहें चारों ओर दौड़ाईं जैसे शत्रुओं की इस सेना में उसे किसी सहायक की तलाश हो। एक लड़के ने कहा।

"इसे खत्म क्यों नहीं कर देते?"

"अरे यार, स्त्री पर क्या हाथ उठायेंगे," मेरे मुंह से सहसा निकल गया। "चलो, आओ, चलें।"

"नहीं, शत्रु को नहीं छोड़ेंगे, स्त्री हो अथवा पुरुष।"

बच्चे को छाती से लगाये वह अंग्रेज महिला भागकर मेरी ओर आई और बोली,

"मेरा पति मर गया है। आप लोग मुझे भी मार डालिये। परन्तु मेरे बच्चे को बचा लीजिये।" और उसने अपने बच्चे को मेरे हवाले कर दिया।

इसके बाद जैसे उसके सिर पर से एक भार टल गया। खून से लथपथ, प्लेटफार्म पर पड़े, अपने पति के पास जाकर खड़ी हो गई और लड़कों को सम्बोधित करके बोली,

"अब आप मुझे जान से मार सकते हैं।"

"भाग जाओ! पुलिस! पुलिस!" उसी समय हमारे कानों में आवाज पड़ी।

पुलिस का नाम सुनते ही सब लड़के भाग निकले। भगदड़ मच गई। मैंने बच्चे को उसकी मां के सुपुर्द किया और वेग गति से भाग खड़ा हुआ।

शहर में सन्नाटा छा गया। धारा १४४ लगा दी गई। पुलिस और फौज का पहरा लग गया। पकड़ धकड़ आरम्भ हो गई। पिताजी की नगर में बहुत प्रतिष्ठा थी। वे स्वयं मैजिस्ट्रेट थे। किसी का साहस न हुआ कि मुझे हाथ लगा सके। लड़कों को इस बात का पता होते हुये भी कि गोली मैंने चलाई थी, कोई मेरा नाम न लेता था। यदि कोई ऐसा करता भी तो पिताजी के भय के कारण उसकी बात को सुनता ही कौन था?

एक सप्ताह पश्चात् स्कूल फिर खुला। क्लासें लगने लगीं। इस घटना को कुछ काल पश्चात् सब लोग भूल गये।

दो मास व्यतीत हो जाने पर एक दिन पुलिस की दो लारियां स्कूल के बाहिर आकर रुकीं। पुलिस ने चारों ओर से स्कूल को घेर लिया। एम० पी०, डी० एस० पी० और पुलिस इंस्पेक्टर स्कूल के अन्दर आये। उनके साथ मेरे पिता जी भी थे। और उनके साथ था वही गोरा।

स्कूल के सब लड़कों को पंक्तियों में खड़ा कर दिया गया।

अंग्रेज अधिकारी से यह कहा गया कि गोली चलाने वाले को पहचान कर बतलाये।

अगली चार पंक्तियों को देखने के पश्चात् गोरा अन्तिम पंक्ति में पहुँचा और मेरे पास आकर रुक गया।

"मैं इसे पहचानता हूँ," वह बोला। "इसने मुझे गोली मारी थी।"

मुझे पकड़ लिया गया गया।

मुकदमा चला। पिताजी ने बहुत हाथ-पांव मारे। कुछ न बन पाया। न्यायालय ने मुझे आजन्म कारावास का दण्ड दिया।

तत्पश्चात् हन्टर कमेटी नियुक्त हुई और मेरे दण्ड के विरुद्ध उसमें अपील कर दी गई।

पिताजी मुझसे जेल में मिलने आये। मैंने उनके कान में एक बात कही। उन्होंने मुस्कराकर मेरी ओर देखा और बोले, "आयु में कम होने पर भी तुम बहुत साहसी और बुद्धिमान हो।"

हन्टर कमेटी के सामने मेरी पेशी हुई। वही मेम वहां विद्यमान थी। मेरे कहने पर पिताजी उसे गवाही देने के लिये बुला लाये थे। जब उससे पूछा गया तो उसने उत्तर दिया,

"मुझे खेद है कि अदालत ने उस लड़के ही को इतना घोर दण्ड दिया जिसने मेरी और मेरे बच्चे की जान बचाई।"

"परन्तु आपके पति के कथनानुसार इस लड़के ही ने गोली मारी थी।"

"इस लड़के ने ?" वह हैरानी से बोली। तो इसने मेरे और मेरे बच्चे के गोली क्यों नहीं मारी ? गोली हाथ से नहीं, रिवाल्वर या राइफल से मारी जाती है और यह खाली हाथ था।"

"इसने गोली मारने के बाद राइफल घर भिजवा दी थी", पुलिस कप्तान बोले। "इस छोटे से नगर में कम लोगों के पास ही राइफलें हैं। पूछताछ से पता चला है कि इसने अपने घर से राइफल चुराकर आपके पति पर फायर किया।"

"मैं यह मानने को बिलकुल तैयार नहीं", उसने उत्तर दिया। जब लड़कों का हजूम मुझ पर आक्रमण करने लगा, इसने उन्हें ऐसा करने से मना किया, इसने मेरे बच्चे को गोद में संभालकर उसकी रक्षा की। यदि उसके पास राइफल थी, तो वह राइफल हम दोनों पर भी चला सकता था। लेकिन यह बिलकुल निःशस्त्र था। मुझे यह बात कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं कि यह निर्दोष है।"

और मैं बरी हो गया।

यह है अपना देश

५

यह है अपना देश

दिल्ली सेक्रिटेरियट से कश्मीर का परमिट लेने के बाद कश्मीर मेल में सीट हासिल करना एक जटिल समस्या होती है। सारी गाड़ी को खाली देख भाई रामप्रकाशजी बोले कि जब तीसरे दर्जे में शानदार सीटें हैं और पंखे लगे हैं, तो सेकिंड क्लास का टिकट खरीदना मूर्खता है, और इंटर तथा थर्ड में किराए के अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं होता। उनकी यह :बात अनुचित प्रतीत न हुई जब कि बेकार गंवाने के लिए पैसे पास नहीं थे।

जब मैंने परामर्श दिया कि बिस्तर ऊपर की बर्थ पर लगाएं, तो बोले, "दिल्ली भोपाल नहीं है, और तुम भोपालियों को इतना भी मालूम नहीं कि कश्मीर मेल में ऊपर की बर्थ के बजाए नीचे की सीट पर आराम से सोया जाता है।"

"लेकिन वह तो तभी होगा जब आने जाने वाले सोने देंगे।" मैंने कहा।

वह मेरा मज़ाक उड़ाते हुए बोले, "यह दिल्ली है, भोपाल नहीं; और आप पंजाब जा रहे हैं, बम्बई नहीं। पंजाब के लोग बेहद शरीफ हैं और निर्बल पर दया करना वे अपना कर्त्तव्य नहीं, धर्म मानते है।"

"क्या यह बात उनमें आज़ादी मिलने के बाद पैदा हो गई है ?" मैंने पूछा ।

"यह तो उनमें पहले ही से थी, किन्तु इससे पहले उन्हें इसे बरतने का अवसर ही नहीं मिला था ।"

"तो आज वे इस शस्त्र को मुझ पर इस्तेमाल करेंगे ?" मैंने सहम कर पूछा ।

"तुम देखोगे तो मान जाओगे ।"

"इसका मतलब यह हुआ कि मुझे बिस्तर नीचे की सीट पर लगाना चाहिये ?"

"कम से कम मेरा तो यही परामर्श है और आप जानते हैं कि मैंने पन्दरह वर्ष फौज में नौकरी की है और...."

मैंने एक लम्बी आह खींच कर उन की आज्ञा पालन करने में ही बेहतरी समझी । मैं उनके अनुभव से तो इतना प्रभावित नहीं हुआ था, हां, उनके फौजी डिसिप्लिन से जरूर घबराता था । लाचार बिस्तर को नीचे की सीट पर जमा दिया ।

बाकी आधी सीट को मूंछे चढ़ाए, गबरून की कमीज और लट्ठे की सलवार पहने एक नवयुवक सम्भाले बैठा था । उसके सामने वाली आधी सीट पर उस की पत्नी बैठी थी जो ब्लैक बोर्ड की तरह काली और डबल रोटी की तरह फूली हुई थी । एक सीट पर दो सरदारजी बैठे थे । एक सीट पर लम्बी कृपाण लिए एक दूसरे सरदारजी बैठे थे । दूसरी सीट को होशियारपुर जाने वाले एक लालाजी सम्भाले बैठे थे ।

रामप्रकाश ने बातों बातों में सबसे पता कर लिया कि उनमें कोई भी पठानकोट जाने वाला नहीं । रोष में आकर बोले—

"यदि मैं टिकट कलक्टर होता तो इन सबको इस डिब्बे से उतार देता । ईडियट कहीं के ! दूसरी गाड़ी में सफर क्यों नहीं कर सकते ?

व्हाट ए डर्टी कंट्री इज़ दिस इंडिया आफ योर्स !" (यह तुम्हारा भारत कितना वाहियात देश है।)

उनका क्रोध तेज होते देख मैं उन्हें तुरन्त प्लेटफार्म पर एक रेस्टोरां में ले गया जहां उन्होंने क्रोधावस्था में एक दर्जन प्लेटों पर हाथ साफ किया। आइसक्रीम से उनके क्रोध के अंतिम चिन्हों को मिटा, उनसे विदा ले मैं डिब्बे में दाखिल हुआ।

अब तक वहां ऊपर की सीटें भर चुकी थीं। एक ओर एक सैनिक आकर सो गया। दूसरी आधी सीट पर एक लालाजी बच्चे को लेकर बैठ गए। उनके सामने की सीट उनकी पत्नी और दूसरे दो बच्चों ने सम्भाल ली। ऊपर की तीसरी सीट पर दो सिख सज्जन सो रहे थे। इंजन के सीटी देते ही पांच सिख सज्जन डिब्बे में और घुस आए। सब्जीमंडी जाकर चार और सरदार कृपाणें सम्भाले दाखिल हो गए।

होशियारपुर जाने वाले लालाजी से न रहा गया। बोले, "यह कश्मीर मेल है।"

"हमने समझा लद्दाख मेल है," एक युवक सरदार बोला।

सब ठहाका मार कर हंस पड़े। लालाजी खामोश हो गए।

"लालाजी आप शायद कश्मीर के मोरचे पर लड़ने जा रहे हैं?" दूसरे सरदार ने पूछा।

"नहीं, बख्शी गुलाम मुहम्मद से मिलने जा रहे हैं" तीसरे ने कहा।

"तुम्हें किसी को नहीं पता," चौथे सरदारजी बोले। "यह लद्दाख में लामा से मिलने जा रहे हैं।"

पूरा डिब्बा अट्टहास से गूंज उठा।

लालाजी खिड़की से बाहर झांकने लगे। काली डबल रोटी ने अपने पति के कान में कहा, "मूंछें नीची कर लो।"

"क्यों ? क्या कोई कबाइली है ?" लालाजी ने मूंछों को ताव देते हुए कहा।

यह देखकर युवक सिख बोला, "ओ लछमनसिंह, जरा देख ले कृपाण तेज भी है ? शायद आज रात को इस की जरूरत पड़ेगी।"

"अरे यार आज तो नाखून काटने वाली कैंची से ही काम चल जाएगा। कोई पठान तो है नहीं, लाला ही तो है," लछमनसिंह ने उत्तर दिया।

नवयुवक अपनी मूंछों को ताव देकर कुछ उत्तर देना ही चाहता था कि उस की पत्नी ने उसकी ओर घूर कर देखा। उसे मूंछें नीची करनी पड़ीं और एक फुफकार मार कर वह सीट पर लेट गया।

गाड़ी चली तो लछमनसिंह बोला, "यार मिलखासिंह, यह कितनी ज़्यादती है कि एक सीट पर तो केवल दो आदमी लेटे हैं और हम आठ खड़े हैं।"

"इन दोनों को भी कश्मीर जाना होगा।"

"तो क्या बैठकर कश्मीर नहीं पहुँच सकते ?" एक बोला।

"भाई लाले हैं। इनका राज है," दूसरे ने कहा।

"तो सैकिंड क्लास में बैठ कर जाएं," तीसरा बोला।

"देखो, यार कितना अंधेर है ! हम इतने आदमी खड़े हैं और ये दो सो रहे हैं।"

"इसीलिये तो हम सिख स्टेट के लिए चिल्ला रहे हैं।"

"भई, वाहगुरु की सौगंध ! जिस दिन अपनी स्टेट बन गई, मेरे इलाके में एक भी लाला नहीं रहेगा।"

"मैं तो उससे पहले ही सबको लूट लूंगा।"

"अरे जेल जाओगे ?"

"जेल !" नवयुवक सिख बोला। "तुम लोग कुछ नहीं जानते। मैं पुलिस हूँ—मुझ से पूछो। अब तो सरकार ने लोगों की यह मांग स्वीकार कर ली है कि जेलों में कैदियों को काम दो और उनका वेतन नियुक्त करो। उनके लिये फस्ट क्लास होटल खुलवाओ। उनके लिये महाप्रसाद का प्रबन्ध करो। अब यह बताओ कि एक लाले को लूट कर जेल में इतने सुख पाना क्या घाटे का सौदा है? क्यों, भई मिलखासिंह?"

"यह तो बड़े मुनाफे का सौदा है," मिलखासिंह ने मूंछो को ताव देते हुए मेरी ओर देखते हुए कहा।

मैंने अपना मुंह दूसरी ओर मोड़ लिया और आंखें मूंद लीं।

"आज तो कुछ होकर ही रहेगा," एक सिख बोला।

"क्या होकर रहेगा?" जपजी साहब बन्द करके और कृपाण को गाड़ी के फरश पर मार कर सिगल सीट वाले सरदारजी बोले, "क्या टरटर लगा रखी है?"

"आप शायद लाला सिख हैं, सरदारजी!" लछमनसिंह बोला।

"मैं असली सिख हूँ। तुम लोगों की तरह देशद्रोही नहीं," वह गरज कर बोला।

"हम देशद्रोही है?" मिलखासिंह बोला।

"मैं प्रत्येक फिरकापरस्त को, वह चाहे हिन्दू हो अथवा मुसलमान या सिख, देशद्रोही समझता हूँ—देश और मानवता का घोर शत्रु।"

"कारण?"

"कारण यह कि तुम लोग अपने मामूली से लाभ की खातिर हिंदू सिख, हिंदू मुसलमान या सिख मुस्लिम फसाद की चिनगारी सुलगा सकते हो। सीट न मिल सकने के कारण तुम लोग हिन्दुओं को घृणास्पद शब्दों से पुकार रहे हो और उन्हें लूटने की धमकी देकर सिख स्टेट का चित्र खींच कर बतला रहे हो।"

"तो क्या हम खड़े रहें ?"

"आप से इस गाड़ी में चढ़ने को किस ने कहा है ? क्योंकि टिकट कलेक्टर यहां नहीं आया, इसीलिये आप अपना अधिकार जतलाए जा रहे हैं ? अंबाला जाने वाला इस गाड़ी में सवार नहीं हो सकता।"

"लेकिन मैं तो जालंधर जा रहा हूँ," लछमनसिंह बोला।

"वहाँ के लिए तीन और गाड़ियां जा रही हैं," वह सरदारजी तुरंत बोले। "लम्बी सवारी को आराम की जरूरत है, इन लोगों को कितनी दूर जाना है, आप ने यह भी कभी सोचा है ?"

"अरे, यह क्या कर दिया ?" मूंछों वाला व्यक्ति इस तरह उठकर चिल्लाया जैसे ततैए ने काट लिया हो।

"क्या हुआ ?" उसकी पत्नी ने घबराकर पूछा।

"बच्चे ने ऊपर से पेशाब कर दिया।"

"पेशाब !" वह क्रोध से बोली।

"ओ मिस्टर," वह ऊपर सीट की ओर मुंह करके बोले, "तुम्हारे बच्चे ने पेशाब कर दिया।"

"बच्चे पेशाब नहीं तो क्या अमृत वर्षा करते है ?" ऊपर वाले लालाजी बोले।

"अरे, अमृत तुम्हारे भाग्य में कहाँ ! परन्तु तुम देखते नहीं कि उसने मेरे कपड़े खराब कर दिए हैं ?"

"तो क्या मैंने इसे सिखलाया है ?" लालाजी तेज हो कर बोले।

"तुम बड़े बदतमीज़ हो ! एक चोर दूसरे चतुर। तुम्हारे बच्चे ने मुझ पर पेशाब कर दिया और तुम मुझसे लड़ रहे हो ?"

"यदि तुम्हारे बच्चा होता तो वह क्या कभी ऐसा न करता ?"

"तुम्हारा मतलब है कि हमारे बच्चे ही नहीं ?"

"मांग कर लाए होंगे," लालाजी की पत्नी ऊपर की दूसरी सीट से अपने पति की सहायता पर उतरती हुई बोली।

"मांग कर आया है तेरा," डबल रोटी अपने पति की सहायिका बन कर बोली।

अब क्या था! युद्ध की बागडोर निपुण योद्धाओं के हाथ में चली गई और उन्होंने आध घण्टे तक जबान की खूब कैंची चलाई। उन्हें उत्तेजित करने वालों की कमी न थी। सरदारों की दो पार्टियां बन गईं; एक नीचे वालों को उकसाती, दूसरी ऊपर वालों को भड़काती। दोनों लाले खामोशी से इस कांड को देख रहे थे। बहुत देर के बाद उन्हें ध्यान आया कि उन्हें उल्लू बनाया जा रहा है। बड़ी कठिनाई के बाद उन्होंने अपनी पत्नियां को समझा कर सीज़ फायर का प्रबंध कराया।

सिंगल सीट वाले सरदारजी ने एक आह भरी, जिस से मेरा ध्यान उन की ओर आकर्षित हुआ। प्रयत्न करने पर भी मैं अपने को रोक न सका और उनसे बोला, "सरदारजी, क्या कुछ याद आ रहा है?"

"हां"

"क्या?"

"देश का दुर्भाग्य।"

"कैसे?"

"समझदार लोग समझते थे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारा देश उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो जायगा।"

"आप का मतलब है कि देश में उन्नति नहीं हो रही है? प्रजातंत्र की उन्नति हो रही है, कारखाने खुल रहे है, उद्योग-धन्धे बढ़ रहे हैं—चारों ओर उन्नति हो रही है। क्या आप इससे इनकार कर सकते हैं?"

"मेरे मित्र" वह मुझे प्यार से सम्बोधित करते हुए बोले, "प्रजा-तन्त्र, कारखाने और उद्योग-धन्धे कितनी ही अच्छी बातें क्यों न हों,

केवल इन्हीं से देश की उन्नति नहीं हो सकती। और यदि इनके फल-स्वरूप देश धनी हो भी जाए तो भी हम सच्चे अर्थ में उसे खुशहाल नहीं कह सकते।"

"तो क्या दरिद्रता के बढ़ने से खुशहाली बढ़ती है ?"

"चरित्र से।"

"वाह, सरदारजी !" मैंने सिर हिला कर कहा। "आपके विचार में हमारे देश ने चरित्र के बिना ही स्वतन्त्रता का युद्ध जीत लिया ?"

"खैर, इस बात को छोड़िए। परन्तु यदि हमारे देश से चरित्र इसी तेजी से भागता रहा तो एक दिन उसका चिन्ह मात्र मिट जाएगा। आज हमारा चरित्र, भारतवर्ष का चरित्र कहां है ! चरित्र नाम की वस्तु तेजी से मिट रही है। जिस देश ने संसार भर को प्रेम का संदेश दिया, आज वहां घृणा का बाजार गरम है। यहां भाई-भाई का और बाप-बेटे का शत्रु है। वर्गीयता और प्रांतीयता का जोर है। आज हम हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, सिख हैं, ब्राह्मण, कायस्थ और बनिए हैं, गुजराती, मराठी और बंगाली हैं। हम सब कुछ हैं, पर हिन्दुस्तानी नहीं हैं।

"सरदारजी, वह तो सदा ही होता रहा।"

"सदा तो नहीं, पर जब कभी ऐसा हुआ और हम में पारस्परिक फूट पड़ी तो हम दूसरों के आक्रमण के शिकार हुए। इतिहास पढ़ कर भी हम कुछ सीख नहीं पाए हैं। देश की हालत देखकर बेहद रोना आता है।"

परन्तु मुझे रोना नहीं, नींद आ रही थी। मैं लेट गया और शीघ्र ही मेरी आंख लग गई।

कुछ देर पश्चात् मुझे अचानक प्रतीत हुआ कि मेरे बिस्तर पर लोहे का वजन पड़ा है जो मुझे दबाए जा रहा है। मैंने समझा कि अधिक भोजन के कारण तबीअत भारी हो गई है और भयानक स्वप्न

आ रहे हैं। मैंने फिर सोने की कोशिश की, लेकिन वजन बढ़ता ही गया। बड़ी कठिनाई से मैंने आंखें मलीं। क्या देखता हूँ कि सरदार लछमनसिंह मेरे आधे बिस्तर पर लेटे हुए हैं।

मैं गुस्से से पागल हो उठा। परन्तु जुलाहे का गुस्सा अपनी दाढ़ी पर! अब इस तीन मन की लाश से लड़ाई मोल लेना मौत को आमंत्रित करना था और चुप रहना पिसने के तुल्य था। आध घण्टे की कशमकश के बाद मैं उठ कर बैठ गया और उन्हें संबोधित कर के बोला,

"सरदारजी, हम बिस्तर ऊपर लगा रहे थे, फिर सोचा नीचे ही लगा लें।"

"क्यों?" उन्होंने पूछा।

"यह सोच कर कि शायद दुनिया से अभी शराफत का अंत नहीं हुआ। परन्तु आप ने सिद्ध कर दिया कि...."

"शराफत नाम की वस्तु संसार से बिलकुल उठ गई है" जपजी वाले सरदारजी मेरे वाक्य को पूरा करते हुए बोले।

लछमनसिंह को नींद सता रही थी। वह अनसुनी कर करवट लेकर मजे से सो गया। सरदारजी को भाषण का एक और अवसर मिल गया। बोले,

"देखा! यह है हमारा स्वार्थ। सीट न मिलने पर एक पृथक राज्य निर्माण किया जा रहा था। सीट मिल जाने से मजे में सो रहे हैं। दूसरे प्रांत वाले जब इन से ऐसी बात करेंगे तो उन्हें संप्रदाई और पंजाब-शत्रु का नाम देंगे। स्वार्थ पूरा होने पर किसी और बात की चिन्ता नहीं। हे वाहगुरु, कहां है चरित्र हमारे देश का!"

"सरदारजी, इस में चरित्र की क्या बात है?" होशियारपुर वाले लालाजी बोले।

"लालाजी, इस में नहीं, प्रत्येक बात में चरित्र की जरूरत है। अभी-अभी पिछले स्टेशन पर जो बीबी अपने पति के साथ गाड़ी से उतर कर गई है, उसे सारा डिब्बा किस तरह घूर कर देख रहा था। यह किसी के मन में नहीं आया कि उसे अपनी सीट पेश कर दे। और जब मैंने उसे अपनी सीट पर बैठाया तो सब कानाफूसी करने लगे। दूसरी औरत बच्चे को लिए ऊपर चढ़ कर बैठी है। हम में से उसे किसी ने नहीं कहा कि वह नीचे वाली किसी सीट पर बैठ जाए। यह जो लालाजी लेटे हैं, थूक थूक कर इन्होंने डिब्बे के फरश की पालिश कर डाली, पर खिड़की खोल कर बाहर नहीं थूक सकते। इनकी श्रीमतीजी पानी बाहर फेंकने के बजाय अन्दर फरश पर ही बहा रही हैं। और लालाजी, आप हैं कि एक तो बीड़ी के धूएं से डिब्बे के वातावरण को दूषित कर रहे हैं, दूसरे बीड़ी के टुकड़ों को बुझा कर अंदर डिब्बे में ही फेंके चले जा रहे हैं!"

"कौन बीड़ी पी रहा है? उस की·······" लछमनसिंह तुरन्त उठ कर बैठ गया और क्रोधभरी दृष्टि से लालाजी की ओर ताकने लगा। लालाजी इतना घबराए कि गाड़ी रोकने वाली जंजीर की ओर देखने लगे।

"अब यह भी चरित्र है," सरदारजी लछमनसिंह की ओर संकेत करके बोले। "यह ठेके की चार बोतलें खाली कर जाएंगे। दूसरों को पीते देख कर उन्हें बू नहीं आएगी। परन्तु बीड़ी या सिगरेट देख कर आपे से बाहर हो जाएंगे।"

"सरदार साहब, गाड़ी में बीड़ी पीना मना है।"

"सो तो मैं जानता हूँ। परन्तु क्या हम दूसरों को प्रेम से नहीं समझा सकते? मेरे मित्र, जीवन में पहले ही कितनी कटुता है। संसार में यदि कुछ बढ़ रहा है तो वह है कलह और यदि कुछ घट रहा है तो वह है प्रेम।"

"लेकिन सरदारजी, हम से प्रेम करता ही कौन है ?" लछमनसिंह मुस्कराकर बोला ।

"यदि आप इनसान बन जाएं तो आप से दीवारें भी प्रेम करेंगी ।"

"अरे यार, दीवारों से तुम प्रेम कर लेना, हमें तो परियां चाहिएं ।"

"परियां फरिश्तों को ढूंढ़ती हैं ।"

"वे कौन होते हैं ?"

"जो दूसरों को तंग नहीं करते," सरदारजी बोले ।

"जैसे यदि आप मुझे सो लेने दें, तो आप भी फरिश्ता बन सकते हैं," मैंने सुझाव पेश किया । न जाने क्यों इस बात का लछमनसिंह पर इतना असर हुआ कि वह तुरन्त मेरे बिस्तर पर से उठ बैठा और एक ओर सिकुड़ कर बैठ गया ।

पहिये

६

पहिये

दो घण्टे की घोर प्रतीक्षा के बाद ज्यों ही बस चली, पिछली सीट पर बठी हुई बुढ़िया चिल्ला उठी,

"अरे रोको। मेरा लड़का तो आया ही नहीं।"

"कहां है तेरा लड़का?" क्लीनर उसे खाने को दौड़ा।" सबसे कई बार कहा था कि ठीक ग्यारह बजे रवाना होंगे और अब चलने का समय आया तो घूमने चल दिया। लाट कहीं का!"

"लेकिन हम किसी की प्रतीक्षा नहीं करेंगे," ड्राइवर ने गाड़ी को बढ़ाते हुये कहा!

"अरे बेटा, मैं मर जाऊँगी।"

"मर जाउँगी!" क्लीनर उसके वाक्य को दुहराते हुये बोला। "उस समय क्यों न मरी जब तेरा सपूत घूमने चल दिया, जैसे बाप की गाड़ी हो।"

"अरे बेटा, उसके बाप के पास दो गाड़ियाँ थीं, तीन घोड़े थे।"

"क्या तांगा चलाता था?" एक लालाजी बोले।

"लेकिन भाई ! यह तो सरकारी गाड़ी है ! ठीक समय पर छूटती है। ये लोग इतनी देर तक कैसे प्रतीक्षा करेंगे ?" एक सरदारजी ने कहा।

"नहीं बेटा ! ये लोग इतने बेवकूफ तो नहीं कि एक सवारी को छोड़कर चल पड़ेंगे। और फिर गाड़ी में कोई गवांर नहीं, सब पढ़े-लिखे बैठे हैं, ऐसा कब होने देंगे ?"

बुढ़िया की बात पर सब हंस पड़े। ड्राइवर भी मुस्कुरा दिया। परन्तु क्लीनर ने अपना अपमान समझा और अंदर ही अंदर पेचोताब खाने लगा। इतने में वही व्यक्ति टहलता हुआ नज़र आया जैसे उसका जाने का इरादा ही न हो। ज्यों ही वह पास आया, क्लीनर उस पर बुरी तरह झपटा,

"अबे ओ लाट साहिब के बच्चे ! क्या सब तेरे बाप के नौकर हैं जो तेरा इन्तज़ार करें ?"

"अरे सरदार क्यों नाराज होता है ?" वह गाड़ी में प्रवेश करते हुये बोला, "ज़रा हजामत बनवाने चला गया था।"

"सब अट्टहास से हंस दिये, उसकी बात पर नहीं, स्वयं उस पर। वह लगभग साठ वर्ष का बूढ़ा व्यक्ति था। उसके मुंह में एक दांत न था। वह लम्बा गबरुन का कुरता, सफेद तहमद और सफ़ेद पगड़ी पहने था।

"हजामत का बच्चा !' जैसे शादी करानी हो," ड्राइवर क्रोध से बोला।

"तो तुम्हारा ख्याल है कि नहीं करानी ?" बुड्ढे ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया। "अरे भाई, यही तो मुश्किल है। माँ कहती है बहू के बग़ैर घर में रौनक नहीं। मां की बात कैसे टालूं ? श्री नगर में शादी होनी निश्चित पाई है।"

"बूढ़ू पचास वर्ष की होगी ?" एक सवारी ने पूछा

"पचास की नहीं, पचीस की !"

"राम, राम, राम ।" लालाजी बोले ।

"हे सच्चे बादशाह ! हमारी भी तू ही सुनेगा ।" एक अन्धे सरदार जी आह खींच कर बोले ।

ड्राइवर ने पीछे मुड़ कर वर को ध्यानपूर्वक देखा और उसके अथवा उसकी बनने वाली पत्नी के विषय में सोचता हुआ बोला,

"लाला जी, आपने हमारा बहुत हर्ज किया, हमें इस देर के लिये उत्तर देना होगा । ख़ैर, आपके विवाह में तो सम्मिलित होना ही पड़ेगा ।"

लाला जी घबरा गये और कुछ सोचने लगे ।

बस फिर स्टार्ट हुई और काश्मीर की ओर चल पड़ी ।

बस की अगली दाईं बर्थ पर एक ऐंग्लोइण्डियन और एक रिटायर्ड हिन्दुस्तानी फौजी अफसर बैठे थे । बाईं बर्थ पर कैन्टीन का अपढ़ मालिक धर्म प्रकाश और मेजर कौशल बैठे थे । दूसरी दाईं बर्थ पर एक काश्मीरी पण्डित और उनकी पत्नी और बाईं को श्रीमती कौशल और उनकी माँ सम्भाले हुये थीं । उनसे पिछली दो दाईं सीटों पर एक लालाजी तथा एक अन्धे सरदारजी बैठे थे । और बाईं पर एक जर्मन साहिब और एक आस्ट्रियन महिला बैठी थीं । इन दो, दो सीटों की तीनों लाइनों के पीछे आमने सामने दो लम्बी बर्थ थीं । बाईं को मैं, प्राण और मधु सम्भाले थे और दाईं पर तीन सरदार डटे हुये थे । सबसे अन्तिम बर्थ पर क्लीनर, बुढ़िया, बुढ़िया का साठ वर्षीय दूल्हा लड़का, श्रीनगर के एक कालेज का विद्यार्थी और एक मुफ्तखोर ड्राइवर बैठा था ।

चौबीस व्यक्तियों के इस छोटे से कुटुम्ब ने दो दिन एक ही घर

में व्यतीत करने थे, जिसमें एक एंजिन लगा था और जो काश्मीर की ओर भागा जा रहा था। यात्रा की थकान बेआरामी को कम करने क लिये मोटर के जीवन में आनन्द पैदा करना जरूरी था और यह तभी हो सकता था जब इस अस्थाई कुटुम्ब के व्यक्तियों से थोड़ा बहुत परिचय हो सके। प्राण ने प्रस्ताव किया कि यथारीति परिचय कराने का दायित्व मधू अपने ऊपर ले। छूटते ही मधु आस्ट्रियन महिला को सम्बोधित करके बोला,

"आप भी श्रीनगर तशरीफ ले जा रही हैं ?"

"येस," उसने उत्तर दिया।

"और इस बस में मसूरी तो नहीं जा सकतीं," प्राण धीरे से बोला।

उसके साथ बैठे हुये जर्मन ने मधू को घूर कर देखा। प्राण घबड़ा कर मेरी ओर देखने लगा और मैं जर्मन की ओर। मेरा विश्वास था कि जर्मन की सर्द निगाह मधू के साहस को बर्फ बना देगी। परन्तु वह फिर बोला,

"देखिये, कितनी सुन्दर नहर बह रही है।"

"ब्यूतिफुल !" उसने मुस्करा कर उत्तर दिया। जर्मन ने पहले नहर की ओर निगाह दौड़ाई फिर मधू की ओर भौं सिकोड़ कर बोला,

"सब नहरें ऐसी ही तो होती हैं।"

मधू उसकी बात की उपेक्षा करते हुए, मिस क्लार्क को सम्बोधित करके बोला,

"आप शायद आस्ट्रिया से तशरीफ ला रही हैं ?"

"आपने ठीक अनुमान लगाया।" उसने उत्तर दिया।

"स्त्रियों के विषय में इनका अनुमान कभी गलत नहीं होता।" प्राण बोला।

कुछ देर में हम माधोपुर पहुँचे, बस रुकी और यात्री उतरने लगे।

"श्रीनगर आ गया।" प्राण ने पूछा।

"चुप!" मधू उसे डांट कर बोला। "क्यों हमारा अपमान कर रहे हो।"

"लोग उतर क्यों रहे हैं?"

"परमिट दिखलाने के लिये।"

हम भी उतर पड़े। वहां पहले ही चार बसें खड़ी थीं, दो श्रीनगर और दो पठानकोट जाने वाली। एक टैक्सी भी थी। यहां परमिट दिखलाने के लिये सब गाड़ियों को रुकना पड़ता है। सुन्दर वर्दी पहने पुलिस के जवान और इंस्पेक्टर नज़र आ रहे थे। प्राण ने यथा-सम्भव भयभीत न होने की कोशिश की परन्तु तभी ड्राइवर बोला,

"बाबू जी, पर्मिट निकालिये।"

प्राण ने मधू से कहा और मधू मेरी ओर देखते हुये बोले,

"आप परमिट क्यों नहीं निकालते?"

"क्या मेरे पास जादू की छड़ी है? जब मेरे पास हैं ही नहीं तो कहां से निकालूं?"

"जेब से।"

"वहाँ से निकाल कर तो श्रीमान ने उस ऐंग्लो इण्डियन लड़की को दिखलाया था जो बीना में हमारे कम्पार्टमेंट में बैठी थी।"

"लेकिन मैंने दिल्ली में तुम्हें वापिस कर दिया था।" मधू मेरी ओर देखते हुये बोला।

"किस जगह?"

"चांदनी चौक में"

"वहां तो हम गये ही नहीं।" मैंने कहा

"तो जी० बी० रोड पर दिये होंगे।"

"मुझे नहीं किसी और को क्यों कि वहां तो तुम अकेले ही गये थे।"

"हो सकता है कि मैं वहां ही किसी के पास आया हूँ।"

"क्या वह भी काश्मीर जा रहा है?" प्राण ने पूछा।

"अबे रहा नहीं रही," मधू ने उसे लताड़ते हुये कहा। फिर मुझे सम्बोधित करते हुए बोला,

"यह सब तुम्हारा दोष है।"

"मेरा," मैंने विस्मय तथा रोष के मिश्रित भाव से पूछा।

"और किसका? मैंने तुम्हें हज़ार बार कहा है कि ऐसी जगह मुझे अकेले को मत जाने दिया करो। शुक्र है वहां केवल पर्मिट ही गुम गया।"

मधू का आज का नहीं सदैव से यही तरीका है कि वह अपना दोष दूसरों पर लादने का प्रयास करता है।

"बाबू साहिब, जल्दी कीजिये! पर्मिट निकालिये!" पुलिस के सिपाही ने कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता कि हम श्रीनगर से जाकर भेज दें?" प्राण ने अपनी समझ में एक मौलिक विचार पेश करते हुये कहा।

"वह तो तभी हो सकता है जब आप श्रीनगर पहुँच सकेंगे!" सिपाही ने उत्तर दिया।

"पहुँच तो हम कल ही जायेंगे," प्राण ने भोलेपन से उत्तर दिया।

"पर्मिट दिखलाये बिना आप किसी तरीके तथा किसी रास्ते श्रीनगर नहीं जा सकते।" वह बोला "अरे जाओ, इन्हें इंस्पेक्टर साहिब के पास ले जाओ।" वह दूसरे सिपाही को सम्बोधित करके बोला।

हम सिपाही के पीछे-पीछे कमरे में प्रविष्ट हुये। खाकी वर्दी पहने एक सिख इंस्पेक्टर साहिब कुर्सी पर बैठे थे। दो सब इंस्पेक्टर उनके दाईं बाईं बैठे थे। तीन चार सिपाही खड़े थे। हमारे साथ वाले सिपाही ने इंस्पेक्टर साहिब को सब स्थिति बतला दी। वह बोले,

"पर्मिट के बिना आप आगे नहीं जा सकते।"

"पीछे?" प्राण ने पूछा।

"हां आप वापिस जा सकते हैं।"

"रेल का किराया मिलेगा?" उसने पूछा।

"यदि मैं रेलवे गार्ड होता तो आपको मुफ्त ले जाता।" इंस्पेक्टर साहिब मुस्कुराकर बोले। उन्हें अच्छे मूड में देख कर मैंने कहा,

"आप तो हमारा श्रीनगर जाने का प्रबन्ध कीजिये।"

"आप पर्मिट निकालिये।"

"वे तो गुम गये।"

"नये बनवाइये,"

"किस से?"

"पर्मिट अफसर से।"

"वे कहां हैं पठानकोट,"

"लेकिन आने जाने में बहुत देर लग जायेगी," मैंने कहा।

"आप एक घण्टे में आ जा सकते हैं। यहाँ के बाद गाड़ी लखनपुर में कम से कम डेढ़ घण्टा रुकेगी। आप लोग इसे वहीं पकड़ सकते हैं।"

"जाने का क्या प्रबन्ध होगा?" मैंने पूछा।

"यहाँ एक टैक्सी तो मौजूद है। परन्तु शायद वह पैसे अधिक मांगे।"

"कितने?"

"चालीस।"

"चालीस!" मैं हैरानी और घबराहट से चिल्लाने ही वाला था कि मधू तुरन्त बोल उठा,

"हम पचास देंगे।"

इंस्पेक्टर, सब-इंस्पेक्टर, सिपाही, ड्राइवर मुंशी और जितने तमाशबीन कमरे में जमा हो गये थे, वे सब विस्मय से मधू का मुंह ताकने लगे। उसने बात कुछ इस ढंग से कही कि उन सबको यह पूर्णतया ज्ञात हुआ कि वह रईस ज़ादा है।

"फिर आप देरी मत कीजिये," सब-इंस्पेक्टर साहिब बोले।

"अरे साहिब, कार में आने जाने में आध घन्टे से अधिक क्या लगेगा? धूप सता रही है कुछ खा तो लें," मधू ने उत्तर दिया।

वह बाहिर गया और सेव, केले, अमरूद और नाश्पातियाँ लेकर वापिस आया और उन्हें सम्बोधित करके बोला,

"आइये साहिबान!"

इस अफ़सर ने रही सही कसर पूरी कर दो और सब पर यह व्यक्त हो गया कि रियासतों के विलीनिकरण से पूर्व यह अवश्य किसी रियासत के युवराज होंगे। फिर इंस्पेक्टर साहिब के कान मे धीरे से बोले,

"आप पर्मिट आफ़िसर के नाम परिचय के रुप मे दो शब्द लिख दीजिये कि मेरे मित्र श्री एम० एस० मधू, आई० ए० एस०, एस० डी० एम० ने अपने एक मित्र (मेरी ओर संकेत करके) की मूर्खता के कारण पर्मिट खो दिये हैं। उन्हें कृपया शीघ्र पर्मिट बनवा दोजिये।"

"जरूर। अभी लिखे देता हूँ।"

"और वापिसी पर आप तथा आपके छोटे इंस्पेक्टरज़ हमारे साथ लखनपुर खाना खा रहे हैं," मधू ने प्रस्ताव किया।

"अवश्य," सरदार साहिब मूंछों को बल देते हुये बोले।

उनका पत्र ले टैक्सी में सवार होकर हम पन्द्रह मिनिट में फिर वापिस पठानकोट पहुँचे। दफ्तर के बाहर लोगों की अच्छी खासी भीड़ थी। मधू जाते ही चपरासी को एक ओर ले गया और उसके कान में कुछ कहकर उसे अन्दर दफ्तर में भेजा। यद्यपि हम सब से बाद में पहुँचे

थे हम सब से पहले अन्दर बुला लिये गये। आफिस का नाम बाहर बोर्ड पर लिखा था, 'खोताराम ब्लाकीराम चौधरी'। वे कुछ परेशान नज़र आ रहे थे।

कमरे में प्रवेश करते ही मधू उनकी ओर हाथ बढ़ाकर बोले।

"हैलो, मि० चौधरी; हाओ डू यू डू ?" और उनके हाथ में इंस्पेक्टर का पत्र देकर बोले, "आपको थोड़ा कष्ट देने आया हूँ।"

उन्होंने जल्दी जल्दी पत्र पढ़ लिया और बोले, "आपकी सरदार साहिब से इससे पहले की मुलाकात है ?"

"पहले की ? दस वर्ष से। वे मेरे भाई के सहपाठी हैं।" मधू ने उत्तर दिया। "परन्तु आप कुछ परेशान नजर आ रहे हैं।"

"साहिब क्या बतलायें ?" वे बोले। "नित नई मुसीबत। जब से जनता का राज आया है, नाक मे दम आ गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको नेता समझता है और प्रत्येक नेता अपने आपको शासक। अंग्रेजों के समय में एक अधिकारी के मातहत काम करते थे अब अधिकारियों की गिनती ही नहीं। ये लोग समझते हैं कि शासन किसी क़ायदे कानून से नहीं, इनकी इच्छानुसार चलना चाहिये। किस किस को प्रसन्न करें ? यदि एक बार प्रसन्न कर भी दें तो दूसरे समय फिर नाराज़। परिणाम यह कि सब और सदा नाराज़। उन्होंने ऊपर शिकायत कर दी। पत्रकार तो ऐसी खबर के भूखे होते ही हैं। इस छोटे से नगर में जहां पहले एक भी पत्र न निकलता था, अब दस छपते हैं और आप सबको चुप भी नहीं करा सकते। आज मन्त्री महोदय स्वयं जांच करने आ रहे हैं।"

"कौन मन्त्री ?"

"मि० मोहनसिंह।"

"मि० मोहनसिंह ? खूब !" वह चिल्लाकर बोले। वे तो हमारे सम्बन्धी हैं !"

"सम्बन्धी !" चौधरी साहिब ने अपने खुश्क होठों पर जुबान फेरते हुये कहा।

"जी, और बहुत निकट सम्बन्धी। यही नहीं, चुनाव में मैंने उनकी वह सहायता की कि शत्रु के छक्के छूट गये। क्या ही अच्छा होता यदि उनसे भेंट हो जाती।"

"नहीं साहिब! आप आज अवश्य रुकिये और मुलाकात के बाद ही जाइये," चौधरी सा० के मलीन मुखपर आशा के चिन्ह दीखने लगे।

इन्कार तो कोई नहीं परन्तु परसों मुझे प्रताप कालिज में कामर्स एसोसियेशन का उद्घाटन करना है और बख्शी साहिब स्वयं उस उत्सव में सम्मिलित हो रहे हैं।"

"ओह !" चौधरी साहिब प्रभावित होकर बोले। तो फिर क्या आप एक पत्र........"

"बिलकुल !" मधू ने उनके मनकी बात को भांप कर कहा। "उनके नाम पत्र लिखे देता हूँ, उससे आपका काम चल जायेगा।"

"धन्यवाद !" चौधरी साहिब बोले।

उनके चेहरे की उदासी विदा हो गई और उसके स्थान पर मुस्कान नाचने लगी। उन्होंने अपने बाबू को बुलाया और उन्हें डांट कर कहने लगे,

"आप लोगों को स्वयं इस बात का ख्याल क्यों नहीं आता कि जब इतने प्रतिष्ठित अतिथि आयें तो उनके चाये पानी का ही प्रबन्ध कर दें। शीघ्रातिशीघ्र चाय लगवाइये। अन्दर ही घर पर। सुना ?"

"जी जनाब।"

उन्होंने दूसरे बाबू को बुला कर तुरन्त पर्मिट बनाने को कहा। इधर उधर की बातों के बाद उचित अवसर देख कर मधू बोला,

"आपके टैक्सी वाले बहुत लूटते हैं।"

"केवल माधोपुर से आने जाने के पचास रुपये मांग रहा है।"

"पचास!" वे चिल्ला कर बोले, घण्टी बजाकर उन्होंने अपने सुपरिन्टेन्डेन्ट को बुलाया और उन्हें सम्बोधित करके बोले,

"मि० निरुला! देखिये, यह किसकी टैक्सी है? उन्हे कह दीजिये कि बाहर से आये हुये यात्रियों को इस प्रकार लूटने के जुर्म में उसका चालान किया जायेगा। उसके बहुत अनुनय-विनय करने पर उसे क्षमा कर दीजियेगा परन्तु वह इन साहिबान से कुछ किराया वसूल नहीं करेगा।"

"जी हजूर।"

"आप उसे पांच रुपये इनाम के रूप में दे दीजियेगा।" वह मधू से बोले।

"पांच नहीं दस।" मधू ने तुरन्त उत्तर दिया।

चाय पीने और परमिट लेने के बाद हम वापिस लखनपुर की ओर रवाना हुये। मार्ग में टैक्सी वाले ने कहा,

"साहिब! यदि आप मुझसे ही कह देते कि आप चौधरी साहब के सहपाठी हैं तो मैं आपको श्रीनगर तक ही छोड़ आता।"

"भई हमने तो तुम्हारी बात तक नहीं छोड़ी। परन्तु ये लोग ऐसी बात को तुरन्त ताड़ लेते हैं। हमने तो उनसे तुम्हारी खूब प्रशंसा की।'

"आपका बहुत धन्यवाद।"

एक बजे से पहले हम लोग माधोपुर पहुँचे। पर्मिट दिखला और सरदार साहब का धन्यवाद कर, हम लखनपुर को रवाना हो गये। इंस्पेक्टर तथा उनके मातहत किसी कार्यबश लखनपुर न जा सके।

लखनपुर कस्टम हाउस पर खूब भीड़ थी। व्यापारी लोग अपने अपने ट्रंक खोल कर दिखला रहे थे। बिस्तर तक खुलवाये जा रहे थे। प्राण इस परिस्तिथि को देखकर बोला,

"समय आयगा जब ये कस्टम वाले यात्रियों का पेट भी खुलवाया करेंगे।"

"परन्तु आप को इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।" कस्टम आफ़िसर प्राण की ओर देख मुस्कुराकर बोला।

मधू की निगाहें किसी खोई हुई वस्तू की तलाश में चारों ओर घूम रही थीं। एक जगह पहुँच कर रुकीं। हमें अपने पीछे आने का संकेत कर, वे स्वयं भी उसी ओर चल पड़े और एक होटल के अन्दर दाखिल हुये। वे उसी मेज़ पर जम गये जहा मिस कलार्क अपने जर्मन मित्र नार्मन के साथ खाने की प्रतीक्षा में बैठी थीं। मधू जाते ही उन्हें सम्बोधित करते हुये बोले,

"आप क्या खायेंगी?"

"ओ थैंक यू। मैंने आर्डर दे दिया।"

"कोई हर्ज नहीं।"

और उन्होने होटल के नौकर को बुलाकर स्वयं भी उन्हीं चीज़ों का आर्डर दिया। खाना खाते समय उन्होंने पर्मिट बनवाने के विषय में बातें कीं। हर बात वे इस ढंग से करते कि मिस क्लार्क पर उसका ज्यादा से ज्यादा असर पड़े और उसका ध्यान नार्मन से हटकर उसकी ओर आकृष्ट हो। खाना खत्म हुआ तो बिल पर झगड़ा शुरू हुआ। मधू इस बात पर ज़िद्द कर रहे थे कि वे ही बिल अदा करेंगे! अन्त में जीत उन्हीं की हुई। इस खुशी में उन्होंने बैरे को एक रुपया बख़शीश के तौर पर दिया। बिल चुकाते समय जब उन्होंने दस रुपये का नोट निकाल कर बैरे को दिया और यह वाक्य कसा,

"हाओ डैम चीप फूड!" तो प्राण रोष से विह्वल हो उठा। वह जानता था कि क्रेडिट तो सारा मधू ने ले लिया और पैसे जायेंगे कामन फण्ड से। परन्तु अवसर उचित न जान क्रोध करने के बजाये उन्होंने अन्दर ही अन्दर कुढ़ना पसंद किया और बस में जाकर अपनी जगह

पर बैठ गये । क्लीनर ने विसल दी और शेष मुसाफिर भी अपनी-अपनी सीटों पर जम गये।

गाड़ी जम्मू की ओर रवाना हुई। जम्मू तक मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न थी, पहाड़ी झरनों के अतिरिक्त। वे एक दम खुश्क पड़े थे और उनके पत्थरों की बेबसी को देखकर यह विचार भी न किया जा सकता था कि कभी यहाँ पानी की बहार होती होगी। मार्ग में न पर्मिट का झगड़ा था न कस्टम का। गाड़ी थी, ड्राइवर था, हम थे, सवारियाँ थीं। मधू थे, क्लार्क थीं। आकर्षक मार्ग था मनमोहक बातें थीं।

"आप हिन्दुस्तान कब पधारीं?" मधू ने मिस क्लार्क से पूछा।

"दो माह पूर्व।"

"सैर के लिये?"

"काम के लिये।"

"व्यापार?"

"एक प्रकार से!" उन्होंने उत्तर दिया।

"वास्तव में मैं भारत के विषय में एक पुस्तक लिख रही हूँ।"

प्राण अभी तक क्रोध की मुद्रा बनाये बैठा था, यह बात सुन कर तुरन्त बोल उठा,

"मदर इण्डिया?"

सब ठहाका मारकर हंस पड़े।

प्राण न हंसा, न झेंपा। हाँ सब के इस व्यंग पर मन ही मन क्रुद्ध अवश्य हुआ।

"आप का संदेह बिलकुल उचित है," मिस क्लार्क संजीदगी से बोलीं।

"अब तक भारत को विदेशियों ने पक्षपात की दृष्टि से देखा है और मिस मेयो तथा निकोलस बैवरली ने उसके सम्बन्ध में विषाक्त दृष्टिकोण पेश किया है।"

"परन्तु आज संसार के विभिन्न देश भारत को सहानुभूति तथा आदर की दृष्टि से देखते हैं। अंग्रेज जैसे प्रबल शत्रु को जिसके राज्य पर कभी सूर्य्यास्त न होता था, शान्ति युद्ध द्वारा पूर्णतया पराजित कर, स्वातंत्र्य युद्ध को जीतना सचमुच भारत ही का काम था। प्राचीन काल से भारत धर्म के क्षेत्र में सहिष्णुता का प्रचार करता आया है और आज परराष्ट्र नीति में भी वह उसी धर्म का पालन कर रहा है। आज विश्व के बहू-संख्यक देश भारत की ओर आशापूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं।"

किन्तु प्राण मिस क्लार्क की ओर नहीं, एक पत्रिका को देख रहे थे। उन्हें यों निमग्न देख वह बोलीं,

"आप क्या पढ़ रहे हैं?"

"एक कहानी," वह दृष्टि को ऊपर उठाकर बोले।

"स्वतन्त्र भारत में साहित्य तो खूब उन्नति कर रहा होगा?"

"क्या कहने मैडम?" मैंने उत्तर दिया।

"हिन्दी की कितनी साहित्यिक पत्रिकायें छपती होंगी?" वे बोलीं।

"एक दर्जन से कम तो क्या होंगी।" मैंने गर्व से कहा।

"छत्तीस करोड़ की आबादी में?" वे विस्मित होकर बोलीं।

"परन्तु आपने पत्रिका ली कहां से?" नार्मन ने प्राण की ओर देखकर कहा।

"आपसे," उसने मेरी ओर देखकर कहा।

"और आपने?" उसने मुझसे पूछा।

"मधू से," मैंने उत्तर दिया।

"और आपने?" उसने मधू से पूछा।

"कल रेलगाड़ी में अपने कम्पार्टमेंट में एक सज्जन से और उन्होंने अपने एक मित्र से ली थी।"

"क्या मूल्य है इसका ?"

"आठ आना।"

"ओह!" मिस क्लार्क बोलीं, "तो आठ आने की एक पत्रिका को लगभग पचास व्यक्तियों ने पढ़ा ?"

"और शायद पचास अभी और पढ़ें।" नार्मन बोला,

"साहित्यिक रुचि उन्नति कर रही है ना!" मैंने कहा।

"इसी कारण यहां के सम्पादक लेखकों को पारिश्रमिक भी नहीं दे सकते," नार्मन कुछ सोचकर बोला।

"मेरे मित्र!" मैंने कहा, "भारत का साहित्यकार रुपये का गुलाम नहीं। वह आध्यात्मवाद में विश्वास रखता है।"

"परन्तु यहां के साहित्यकार को भूख तो लगती होगी," मिस क्लार्क बोलीं। "और उसके बाल-बच्चे भी होंगे।"

"भूख लगने पर वह रोटी खाता है और बाल बच्चों को भी खिलाता है," मधू ने उत्तर दिया।

"तो रोटी कमाने के लिये साहित्य के अतिरिक्त उसके पास कोई और साधन भी हैं ?" क्लार्क ने पूछा।

"मैडम!" मधू उसके भोलेपन से प्रभावित होकर बोला, "भला साहित्य रोटी कमाने का साधन कैसे हो सकता है ? वह तो केवल एक शौक है और शौक पूरा करने के लिये सदैव पैसे मिलते नहीं, बहुधा जेब से भी खर्च करने पड़ते हैं।"

"वह कैसे!" क्लार्क विस्मयपूर्वक बोलीं।

"जैसे कागज़ के अतिरिक्त रजिस्ट्री इत्यादि पर।"

"मैंने तो यह सुना है," मि० नार्मन बीच में ही बोल उठे, "कि आपके देश में ऐसे व्यक्ति भी मिलते हैं जो अपनी जेब से पैसे खर्च करके, पत्र-पत्रिकाओं में अपने नाम से लेख छपवाते हैं,"

इस कुठाराघात का मैं उचित उत्तर देने ही लगा था कि बस रुकी और उसके दोनों ओर से आवाज़ें कान में पड़ीं,

"आलू चने खस्ता" "मीठे आम"

"ताज़ा बिस्किट खताई," "नाश्पाती, अमरूद।"

सवारियाँ उतरीं। कोई पानी और कोई सिगरेट पीने के लिये। सड़क के दोनों ओर एक एक दुकान थी। इन दुकानों में क्या न मिल सकता था? सब्ज़ी और पूरी, बर्फ़ी और पकौड़े, चाप और दूध, सोडे और लैमन के अतिरिक्त यहां पान और सिगरेट भी मौजूद थे। दुकान-दारों के कपड़े देखकर यह अनुमान होता था कि वे सिल जाने के बाद धुल नहीं पाये थे और फट जाने के पश्चात ही शरीर से पृथक किये जा सकेंगे। मिठाई पर मक्खियां आसन जमाये बैठी थीं और सड़क की धूल ने बालाई की तह को मोटा कर दिया था।

दस मिनट के बाद बस फिर रवाना हुई। सामने से फौजी लारियां ट्रकों, सवारी की बसों और कारों का जैसे एक कारवां चला आ रहा था। आज से पांच छः वर्ष पूर्व इस सड़क पर उल्लू बोलते थे। केवल जम्मू से कठूआ तक एक टूटी फूटी सड़क जाती थी। माधोपुर में रावी को पार करने के लिये कोई पुल न था और काश्मीर के लिये लाहौर और रावलपिण्डी के रास्ते जाना पड़ता था। अब जैसे इस सड़क के भाग्य जाग उठे। कोई ऐसा समय नहीं जब यहां ट्रैफिक बन्द हो सके। सवारी की बसों और फौज़ी लारियों के अतिरिक्त, हिन्दुस्तान से गेहूँ और चावल, चीनी और कपड़े से लदे हुये ट्रक काश्मीर को जाते हैं और वहाँ से ताज़ा फलों और खुश्क मेवों के अतिरिक्त, वहाँ से काश्मीरी दस्तकारियों के उत्तम नमूने भारत को लाते हैं। इन लारियों और ट्रकों

को चलाने वाले ड्राइवरों को कितनी सावधानी और सतर्कता से चलना होता है। पठानकोट से श्रीनगर वे दो दिन में पहुँचते है। वहाँ से फिर पठानकोट वापिस लौटते हैं और फिर श्रीनगर जाते हैं। हर सुबह सफ़र, हर शाम सफ़र, हर माह सफ़र, हर साल सफ़र। लगातार सफ़र के कारण यह लोग दो सौ सतासठ मील लम्बी सड़क से खूब परिचित होते हैं और खतरनाक से खतरनाक मोड़ पर से बस को निहायत आसानी से गुज़ार ले जाते हैं, और शायद जीवन के मोड़ पर से भी इसी प्रकार हंसते खेलते गुज़र जाते हैं। यदि इसमें कभी आशा रूपी बसंत नज़र न आये तो उन का यह कठोर जीवन, जीवन ही न रहे। सुन्दरसिंह ड्राइवर का ध्यान उस काश्मीरन के ख्याल से उलझ रहा था जो सैकंड ब्रिज में एक हाउसबोट में रहती है और जिस के पास वह सुन्दर उपहार और बोतल लेकर जाया करता है। वह पुलाओ और मटन तैय्यार करती है और दोनों मिलकर खाते पीते हैं। संतोषसिंह क्लीनर उस दिन की प्रतीक्षा में रहता है जब वह सुन्दरसिंह के समान पक्का ड्राइवर बनने के बाद, गबरून का कुर्ता और लट्ठे की तहमद, रंगीन पगड़ी और नुकीला जूता पहन कर गांव जायगा और धोलपुर वाले मिलखासिंह की लड़की प्रीतो से अपना विवाह रचायेगा और········

"अरे सन्तोखे के बच्चे!" सुन्दरसिंह चिल्ला कर कह रहा था। "यह तेरा बाप पैट्रोल रुक क्यों रहा है?"

सुन्दर वस्त्रों और प्रीतो की बात भूल, वह बस के रुकते ही नीचे उतरा और एंजिन का ढकना उठा, पैट्रोल की नाली ठीक ठाक करके बोला,

"चलो।"

ड्राइवर ने उसकी ओर घूर कर देखा और गाड़ी फिर स्टार्ट हुई।

मिस क्लार्क और नार्मन घुल मिल कर बातें कर रहे थे। मधू उनकी ओर हसरत भरी दृष्टि से देख रहा था। प्राण पांचवी बार वही

पत्रिका पढ़ रहा था। ऐंग्लोइण्डियन साहिब तथा रिटायर्ड हिन्दुस्तानी आफिसर खामोश बैठे जैसे अपने बीते जीवन की याद दुहरा रहे थे। मेजर कौशल अपनी पत्नी से बातों में व्यस्त थे ; कैंटीन का मैनेजर धर्मप्रकाश अपनी बेईमानी के कारनामों की डींग मार रहा था। तीनों सरदार जो श्रीनगर गुरुद्वारे में गुरुपर्व के सुअवसर पर हरिकीर्तन करने जा रहे थे, अपनी सैर का कार्यक्रम बना रहे थे। काश्मीरी पण्डित अपनी पत्नी को समझा रहे थे कि मतली आने पर मुंह खिड़की से बाहर निकाल ले। बुढ़िया का साठवर्षीय पुत्र अपने विवाह का स्वप्न देख रहा था। कालिज का विद्यार्थी नींद के झोंके ले रहा था और क्लीनर और मुफ्तखोर ड्राइवर, मुरलीधर ड्राइवर की बातें कर रहे थे जो एक स्त्री को लेकर भाग गया था।

लीजिये साहिब, जम्मू आ गया। यह तवी का मजबूत और सुन्दर पुल है और यह है उसके नीचे बहती तवी नदी। कुछ वर्ष पूर्व जम्मू को सियालकोट के रास्ते लाहौर को गाड़ी जाती थी। तब हर इतवार को सियालकोट से बहुत से लोग जम्मू जाते थे, जहाँ नहर के किनारों पर एक विशाल मेला लगता था, जहां आम और आइसक्रीम के अतिरिक्त यौवन और सौंदर्य की बहार होती थी। सख़्त गर्मी में भी नहर के बर्फ़ानी पानी में कुछ क्षणों से अधिक नहीं नहाया जा सकता था। नहर के किनारे मेला तो अब भी लगता होगा, परन्तु कुछ दूरी पर स्थित सियालकोट एक विदेशी इलाक़ा बन गया है, जहां एक व्यापारी के चले जाने के बाद दूसरे विदेशी फौजी अड्डे बनाने की कोशिश कर रहे हैं ताकि इतिहास और भी तेज़ी से मुड़ सके अथवा आगे बढ़ सके।

इतिहास का तो पता नहीं हमारी बस अवश्य आगे बढ़ती गई।

कालेज के रास्ते में

७

कालेज के रास्ते में

मैं घर से कालेज चला तो आकाश में एक भी बादल न था। अपने मित्र प्रो० प्रसाद की बात याद आई कि समझदार आदमी आसमान को देखकर इस बात का अनुमान लगा लेता है कि आज छाते और बरसाती की आवश्यकता होगी वा नहीं। आयु में छोटे तथा बुद्धि में कम होने के कारण उनकी बात को मैं कम ही महत्व देता हूँ, परन्तु आवारागर्दी में माहिर होने के कारण मौसिम तथा कुछ अन्य विषयों में उन्हें अनुभवी व्यक्ति मानता हूँ। उनके परामर्श के अनुसार मैं वर्षा का मुकाबला करने के शस्त्रों से सुसज्जित हुये बिना चल पड़ा। अभी मेरे स्कूल में पौन घण्टे का समय था। पैदल तीस और साइकल पर बीस मिनिट का रास्ता था। अगस्त का रमणीक प्रातःकाल था, मैं पैदल ही चल पड़ा। मेरे एक हाथ में रुस का इतिहास था और दूसरे में अमेरिका का विधान। दिली दिमाग में संतुलन रखने के विचार से चार-चार सौ पृष्ठों की दोनों पुस्तकों को एक-एक हाथ में सम्भाले हुये था। सिर पर तो बाल थे ही, हाँ आँखों पर चश्मा सजा लिया था।

यद्यपि इस की कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन यह भी क्या जिन्दगी कि सदा जरूरत ही की बात जाय?

प्रातः के साढ़े सात बजे आप को सड़कों पर कम ही मनुष्य नजर आयंगे, सिवाय भंगियों के। परन्तु भारतवर्ष में इन्हें मनुष्य मानता ही कौन है? और साहिब! माना भी क्यों जाय? अगर उन्हें मनुष्य ही बनना था तो भंगियों के घर क्यों पैदा हुये? यदि भंगी ही बनना था तो भारत में क्यों जन्म लिया? आप कहेंगे कि इसमें उनका क्या दोष है? तो क्या हर बात में हमारा ही दोष है? मैं तो केवल यह कहता हूँ कि वे रुस अथवा अमेरिका में क्यों न पैदा हो गये? या ब्राह्मणों के घर क्यों न जन्म ले लिया? आप मेरी बात को व्यंग समझकर यह कहेंगे कि आज के भारत में यह भेदभाव की क्या बात? अब तो अंग्रेज़ को गये हुये छः वर्ष बीत गये, अब भंगी और ब्राह्मण में कैसा भेद? लेकिन जब अंग्रेज़ को गये हुये सौ वर्ष भी हो जायंगे, तो भी भेदभाव इसलिये नहीं कि हम आदत से मजबूर हैं, परन्तु इसलिये कि हम एक प्राचीन तथा महान संस्कृति के दावेदार हैं, जिसमें ब्राह्मण-ब्राह्मण था और भंगी-भंगी। हम अपनी प्रत्येक त्रुटि के लिये अंग्रेज को उत्तरदाई मानते थे और छींक आजाने पर भी उसे ही दोषी ठहराते थे। लेकिन आज उसके चले जाने के सात वर्ष बाद भी हम शर्मा हैं, वर्मा हैं, टंडन हैं, कपूर हैं, गुप्ता हैं, श्रीवास्तव हैं। हम ब्राह्मण हैं, क्षत्री हैं, बनिये हैं, कायस्थ हैं, पंजाबी और सिंधी हैं, गुजराती और मराठी हैं, हिन्दू हैं, सिख़ हैं, हम सब कुछ हैं, हिन्दुस्तानी नहीं हैं। प्लेटफार्म पर खड़े होकर भाषण देते समय हम देश की एकता की बड़ी-बड़ी लच्छेदार बातें करते हैं। राष्ट्रीय हित को प्रांतीय तथा निजी हित से महत्व देने का प्रचार करते हैं, परन्तु दैनिक जीवन में·······खैर छोड़िये। इन बातों में रखा ही क्या है? दूसरों के लिये भी तो देश का दर्द उठा रखना चाहिये।

और आप सामने से आते हुये सेठ जी से मिलिये।

"नमस्ते, सेठ जी !"

"जयरामजी की।"

"कहिये सेठ जी ! सुबह-सुबह किधर से ?"

"तालाब से !"

"तो क्या अब असली मछलियों को भी फांसना शुरू कर दिया ?" मैंने उनके हाथ में के थैले की ओर देखते हुये कहा।

"राम ! राम !" वह दोनों हाथों से कान पकड़ते हुये बोले। मेरे नहीं, अपने। "मैं तो स्नान करके आ रहा हूँ। और भला मैं मछलियों को क्यों पकड़ूं ? मैं तो उन्हें आटा खिलाता हूँ।"

"ओह ! अब समझ में आया।" मैंने आह खींच कर कहा।

"क्या ?"

"कि हमारा आटा क्यों इतनी जल्द समाप्त हो जाता है।"

"मैं समझा नहीं," सेठ जी बोले।

"आप तो तब समझते यदि आपका आटा खत्म हो जाता।"

"आप तो पहेलियाँ बुझा रहे हैं।"

"मेरे लिये भी यह अब तक पहेली ही थी।" मैंने कहा। "सेठ जी, बात यह है कि पहले हमने कभी गेहूँ को तुलवाया नहीं था। इस बार अचानक तुलवाया तो दस सेर कम निकला।"

"दस सेर कम ! यह कैसे हो सकता है ? राम ! राम ! राम !"

"यह तो आप जानें या आपके तराजू राम।" मैंने उत्तर दिया। "गेहूँ खूब गीला था। जैसे उसे भी तालाब में स्नान कराया हो।"

"नहीं यह तो बरसात के कारण ऐसा हो जाता है।"

"अब समझ में आया। ग्वाला भी यही कह रहा था कि दूध भी

बरसात के कारण पतला हो जाता है और कई बार तो यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि दूध में पानी मिला है या पानी में दूध।"

"परन्तु घी के बारे में तो आपको कोई शिकायत नहीं?" सेठ जी सहानुभूति दिखलाते हुये बोले।

"नहीं सेठ जी, बिलकुल नहीं। और हो भी तो क्या शिकायत करने का दुस्साहस कर सकता हूँ?"

"मतलब?"

"मतलब यह कि घी इस्तेमाल करने के बाद हमारे सब के गले खराब हो गये। लेकिन खैर, इसमें गलों का भी तो दोष हो सकता है।"

"बिल्कुल!" सेठ जी अनुमोदन करते हुये बोले। "यह तो हवा का दोष है।"

"अरे सेठ जी, जमाने ही की हवा खराब है। अच्छा, नमस्ते," मैंने चलने की आज्ञा लेते हुये कहा।

"जय रामजी की," वह दोनों हाथ जोड़कर बोले। "हां···जरा··· पैसे तो भिजवा देंगे आप।"

"पैसे? जरूर·······" मैंने गले को साफ करते हुये कहा।

मैं दरअसल इसी बात से डर रहा था। और इसके जिक्र से पहले भाग जाना चाहता था। लेकिन अब बात छिड़ जाने पर मैंने पूछा,

"सेठजी, कितने रुपये हैं?"

"साठ।"

"बाप रे!" मेरे मुंह से अचानक निकल गया। "गेहूँ का क्या भाव लगाया?"

'एक सेर ग्यारह छटांक।"

"रुपया का?"

"और क्या चवन्नी का?"

"सेठ जी ! आपके मुंह में घी शक्कर," मैंने सपनों की दुनिया की सैर करते हुये कहा। फिर वास्तविकता के संसार में लौटते हुये बोला, "और शक्कर·······वह शक्कर है ना, सेठ जी·······वह आपकी दूकान से आई थी·······उसमें पता नहीं·······रेत···मेरा मतलब·······आपका दोष नहीं·······जो आजकल के बोरे हैं ना सेठ जी··········उनकी बस मत पूछो।"

"बिल्कुल। बिल्कुल। आप ठीक कहते हैं।"

"और सेठ जी, शक्कर के भाव तो चढ़ गये, क्य चाय के रेट भी बढ़ गये ?"

"हां, इस मास से। और डालडे के भी।"

"चलो, यह भी अच्छा हुआ। नमस्ते।"

"जय रामजी की।"

सेठ जी शहर की ओर बढ़े, मैं कालेज की ओर चला !

मैं सोचने लगा कि जब कोरिया का युद्ध आरम्भ हुआ था तो चीजों के भाव बढ़ गये थे और जब समाप्त हुआ तो और भी चढ़ गये। इसका यह लाभ तो अवश्य हुआ कि अब लड़ाई से लौटकर आने वाले सिपाही खूब डटकर डालडा खायेंगे, चाय पियेंगे और अमन की बरकतों का आनन्द उठायेंगे। परन्तु क्या सम्भव नहीं था कि युद्ध लड़ा ही न जाता ? तेईस लाख मनुष्यों की जानें बच जातीं, लाखों स्त्रियों का सुहाग न लुटता और करोड़ों बच्चे अनाथ न होते। क्या अरबों रुपयों को गोलियों की शकल में तबदील करके मौत बरसाने के बजाये किसी दूसरे काम में न लाया जा सकता था ? क्या इससे गरीबों की भूख नहीं मिटाई जा सकती थी ? स्कूल और अस्पताल नहीं खोले जा सकते थे ? परन्तु फिर राजनीतिज्ञ क्या करते ? यदि युद्ध नहीं तो इतिहास में उनका नाम कैसे आये ?

पास से गुजरती हुई मोटर के हार्न ने मुझे चौंका दिया और मैं, कोरिया से वापिस भोपाल आ गया, 'कमलापति' पार्क में। यहां पहुँच कर शिमले के 'स्कैंडल प्वाइन्ट' की याद आ जाती है। दोनों में एक अन्तर यह है कि वहां इन्सानों का समुद्र दिखाई देता है, यहां पानी का। दांई ओर विशाल भवन सिर ऊँचा किये खड़े थे। तालाब का पानी उनकी छाया में नृत्य कर रहा था! किले की इमारत गर्दन अकड़ाये खड़ी थी। शताब्दियों पुराने सपने उसे अपने बीते गौरव की याद दिला रहे थे। उससे दूर हटकर अहमदाबाद के शाही महल देखने में खामोश नज़र आ रहे थे! बायें किनारे पर पानी के बीच, मजबूत खम्भों के ऊपर याट क्लब की सुन्दर इमारत खड़ी थी। दूर परे रमणीक, प्राकृतिक द्वीप स्वर्ग-वाटिका की याद ताजा करा रहा था। तालाब के बायें किनारे हरे वस्त्र पहने खामोश शिमला पहाड़ी खड़ी थी। बीच में दृष्टि जाती थी पानी ही पानी नजर आ रहा था। बरसात में भोपाल के अन्य प्राकृतिक दृश्यों के समान, तालाब भी अपने यौवन पर था। जैसे एक सुन्दर युवती के हृदय में अभिलाषाओं की लहरें उमड़ती हैं, वैसे ही तालाब में पानी की लहरें ठाठें मार रही थीं। तालाब बिलकुल समुद्र मालूम दे रहा था। अन्तर केवल इतना था कि समुद्र समुद्र होता है और तालाब तालाब होता है और बरसात बरसात। तालाब का दृश्य देखने में मैं इतना निमग्न हो गया था कि अपने सिर के ऊपर आकाश में घनघोर घटाओं की सरगोशियों की ओर ध्यान ही न दे सका। मेरे पास न बरसाती थी, न छतरी और घटाओं के लिये यह कोई ज़रूरी न था कि मेरे इन से सुरक्षित न होने के कारण मुझ पर आक्रमण न करतीं। वे पूरे ज़ोर से टूट पड़ीं, जैसे मुझे अकेले में पाने की देर से प्रतीक्षा कर रही हों। मेरे पास अमेरिका विधान और रूस के इतिहास के अतिरिक्त आत्म-रक्षा का कोई सामान नहीं था। लेकिन मुझे तो वे क्या बचाती स्वयं भी न बच सकीं। पानी एकदम इतना तेज कि मैं बिलकुल तर हो गया। मुझे अपने

मित्र प्रसाद की याद आ गई। काश वे इस समय मेरे पास होते और····उन्हें····

"कहिये ! क्या हो रहा है ?" सामने से मेरे मित्र मालिकराम ने कार को रोकते हुये कहा।

"तुम्हारी जान को रो रहा हूँ" मैंने उसे कार में बैठे हुये, मुझे मजाक करते देख कहा।

"रो तो जरूर रहे हो लेकिन यह पता नहीं कि मेरी जान को या अपनी जान को," वह हंस कर बोले।

"इसमें हंसने की क्या बात है ?" मैंने गुस्से से पूछा।

"रोने की भी क्या बात है ?" उसने उसी तरह मुस्कराते हुये उत्तर दिया।

"आप देख नहीं रहे कि मैं एकदम भीग गया हूँ ?" मैंने बनावटी रोष दिखलाते हुये कहा।

"मैं तो खुद हैरान था कि मोमजामें के बने होने पर भी तुम भीग कैसे गये ?" वह मेरा उपहास उड़ाने की चेष्टा करते हुये बोला।

मैं उसकी बात पर हंसा नहीं, जल जरूर गया। लेकिन जब गुस्से को पीते हुये मैं आगे बढ़ा तो मालिकराम बोले,

"आज सरकार नाराज क्यों हैं ? यदि वर्षा ने तुम्हें भिगोया है तो मुझसे क्यों बिगड़ रहे हैं ?"

"लेकिन तुम्हारे कौन से सुरखाब के पर लगे हैं जो मोटर को भगाये फिरते हो और यहाँ पाव से सड़कें नाप रहे हैं।"

"अरे भाई ! जलने वाले जला करें, परन्तु जिस पर भगवान दयालु हों उसका कौन कुछ बिगाड़ सकता है।"

"लोग"—मैंने उत्तर दिया।

"परन्तु पैसा भगवान उन्हें भी जीत लेता है, प्रोफेसर !" वह सिर हिला कर बोले। "इसमें शक्ति है। दुनियां में सारा माया का खेल है। वह बिगड़े काम बनाती है, रूठे हुयों को मनाती है। मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र बनाती है। दिमागों ही को नहीं, दिलों को भी वश में कर लेती है। वह राजनीति में भी काम आती है। जिसके पास है, उसे जिताती है, जिसके पास नहीं, उसे हराती है। वह अखबारों को चलाती है, खतरनाक पापों को छिपाती है ......"

"और तुम जैसे दुष्टों को ऐश कराती है।" मैंने जलकर कहा।

"आज तुम भूखे नजर आरहे हो। क्या नाश्ता नहीं किया ?"

"जैसे तुम इतनी देर तक नाश्ते के बिना रह सकते हो।"

"मेरा तो सिस्टम आजकल ठीक नहीं," मालिकराम बोले। "बहुत कम खाता हूँ।"

"आज सुबह क्या खाया ?" मैंने पूछा। "बहुत हल्का नाश्ता" वे बोले। "एक सेर गुलाब जामुन, आधा सेर बर्फी, तीन पाव जलेबी, चार समोसे और सेब ! असल में मुझे पाइल्ज़ की शिकायत है, इसलिये बहुत सम्भलकर और बहुत कम खाता हूँ।"

"इसीलिये कुछ भूखे नज़र आरहे हो।" मैंने उत्तर दिया। "फिर पूंजीपति हो। ऐसा न हो कि नमक मिर्च लगाये बगैर ही मुझे निगल जाओ।"

"हा, हा, हा" वह ठहाका मार कर बोले।

"और सुनो" मैंने उसे सम्बोधित करते हुये कहा, "तुम्हें पहले भी कई बार चेतावनी दे चुका हूँ कि मजदूरों से बनाकर रखा करो। ऐसा न हो कि कहीं लंच के समय उनसे रार मचा बैठो। और वे तुम्हारी तोंद खोलकर रख दें। यह बात आम हो चुकी है कि तुम्हारे पेट में से पचास मजदूरों की उदर-पूर्ति का राशन मिल सकता है।"

वे फिर अट्टहास से हंसे और गाड़ी स्टार्ट करके चलते बने।

मैं भी क्यों रुकता ? तेज़ कदम उठाता हुआ चलने लगा और उस इलाके में पहुँचा जिसे सिविल ऐरिया कहते हैं। यहाँ की दुनिया ही निराली है ! न यहां शहर की तरह तंग मकान हैं, न तंग गलियाँ, न गंदगी के ढेर हैं, न गंदी नालियाँ। हर शहर के अन्दरुनी और बेरुनी हिस्से में बहुत अन्तर होता है और यहाँ तक कि हंसने रोने का भी पृथक तरीका होता है। मालिकराम भी इसी वातावरण में रहने वाले सदा बदलते रहते हैं। नया रक्त पुराने रक्त में मिलता रहता है। आज़ाद देश का यही चिन्ह है कि वहां प्रत्येक मनुष्य को आगे बढ़ने की आज़ादी हो। साहसी और भाग्यशाली व्यक्ति शहर की तंग गलियाँ छोड़ यहाँ की स्वच्छ जलवायु में आते हैं और अपने आपको नये वातावरण में ढाल लेते हैं।

और आप सिविल एरिया को छोड़ नैसर्गिक सौंदर्य के मध्य आ जाते हैं। सामने ढलवां सड़क है। दोनों ओर सब्ज़ घास का मैदान है। वर्षा में नहा कर पेड़ निखरे खड़े हैं। ऊपर आकाश के फर्श पर काले बादल झूम-झूम कर नाच रहे हैं। सड़क के दोनों ओर तालाब से मिलने के लिये आतुर दो झरने भागे जा रहे हैं। आप प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द लेते-लेते पुल तक पहुँचते हैं।

पुल के दोनों ओर जीवन बसंत है। खेतों से, पहाड़ियों से, पानी शोर मचाता हुआ आ रहा है और तालाब के पानी में मिलकर फूला नहीं समा रहा। दाईं ओर पानी के किनारे से उगी घास पर चरवाहे भैंसों को चरा रहे हैं। मेढ़कों की तरह वे भी वर्षाऋतु की बेताबी से प्रतीक्षा करते हैं। भैंसों को मुफ्त की घास खिलाकर उनके दूध में नल का मुफ्त का पानी मिलाते हैं और उसे शुद्ध दूध बतलाकर बेचते हैं। आधा सेर दूध में आधा सेर पानी का पता ही क्या चलता है ! अच्छी संगति के कारण दूध के साथ मिलकर पानी भी रुपये का सवा सेर बिक

जाता है। और जब तक संसार की वर्तमान अवस्था कायम है और हमारे जैसे सीधे-साधे और मालिकराम जैसे चतुर मनुष्य यहां बसते हैं, बिकता रहेगा। भैंसों और चरवाओं के अतिरिक्त तालाब के किनारे माहीगीरों और बगुलों का बाहुल्य है। माहीगीर अपने लम्बे-लम्बे बांस सम्भाले और बगुले अपनी लम्बी-लम्बी गर्दनें निकाले तालाब के किनारे खड़े हैं। दोनों मछलियों की खोज में हैं। जब मछली सांस लेने ऊपर आती है तो बगुला उसे दबोच लेता है और जब वह भूख से बेताब होती है तो माहीगीर का कांटा उसे फांस लेता है। यह है हमारी दुनियां, जिसमें सांस लेने और भूख मिटाने की भी कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। जितने बगुले तालाब पर हैं उससे कई गुना अधिक समाज में हैं। वे मछलियों का नहीं मानवों का शिकार करते हैं। समाज उन्हें कुछ नहीं कहता और उनके मार्ग में कभी बाधक नहीं होता। बगुलों पर इस कारण भी प्रतिबन्ध नहीं कि उनकी अनुपस्थिति में तालाब में पानी की जगह मछलियां नज़र आयेंगी। लोग कहते हैं कि बगुले तन के उजले और मन के काले होते हैं, परन्तु बगुलों के विचार में मानव हित का उनसे बढ़कर कोई संरक्षक ही नहीं। परन्तु यह तर्क-वितर्क एकदम व्यर्थ है जबकि प्रकृति आपका ध्यान आकृष्ट कर रही है।

बांई ओर रमणीक झील है, दाईं ओर मनोरम पहाड़ी है। झील में लाल कमल हैं, पहाड़ी पर लाल कोठी है। और सामने सड़क की चढ़ाई है। साईकल सवारों को सदा यहां उतरना पड़ता है; छोटे को, बड़े को, पतले को, मोटे को। परन्तु मोटर वाले, वे क्यों उतरें ? दूसरों का उतरना ही उनके लिये काफी आनन्द-दायक होता है। इस सड़क ने कितने मोटर वालों को आते जाते देखा है। जमाने को करवट बदलते और दुनिया का रुख पलटते देखा है। मोटर का सवार समझता है कि वह सदा सवार रहेगा, परन्तु यह सड़क उनसे कहीं अधिक वास्तविक स्थिति को जानती है और संसार की नब्ज़ को पहचानती है। इसी झील में जहां यौवन में मदमस्त लाल कमल नशे में झूम रहे हैं, उनका

चिन्ह मात्र नहीं रहता। यह सुगन्धित और सुखदायक वायु, शरीर को झुलसाने वाली लू बन जाती है। आने जाने वाले बदलते रहते हैं, परन्तु सड़क चलती रहती है, और इसी पर चलते चलते आप मिन्टो हाल पहुँच जाते हैं। यदि यह संगमरमर का बना होता तो निस्संदेह संसार का नवां अजूबा (वण्डर) बन जाता। झील के तट पर इसे खामोश खड़ा देखकर कोई नहीं कह सकता कि इसमें कितना जीवन है, यहां कितनी अभिलाषायें तड़प रही हैं, कितनी आकांक्षायें फड़क रही हैं, जिन्दगी में जिन्दगी लाने के लिये उसे आकर्षक बनाने के लिये। यहीं पर वह सांचा है जहां वे लोग ढलते हैं जो राजनीतिज्ञ बन देश की बागडोर को संभालते हैं और संसार में सुख, शान्ति और सहिष्णुता का झण्डा बुलन्द करते हैं।

डा० लूकस

८

डाक्टर लूकस

पूरे साढ़े पांच बजे डा० लूकस की कार कम्पाउण्ड में दाखिल हुई और एक लम्बे क़द का मनुष्य उसमें से बाहिर आया। उसकी चांद के बाल उड़ चुके थे। उसके शरीर को देखने से पता चलता था कि या तो वह फौज का कप्तान रहा है या पहलवान। कपूर साहिब ने मेज़बान की हैसियत से आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। मेरे समीप आकर, मुझे संदिग्ध नज़रों से देखते हुये, उपेक्षा की दृष्टि से आगे बढ़ने ही वाले थे कि मैंने अपना दायां हाथ उनकी ओर बढ़ाया और जैसे उन पर एक भेद प्रकट करते हुये कहा,

"मुझे संगर के नाम से पुकारते हैं।"

एक बार मेरे बिलकुल इसी प्रकार कहने पर एक प्रांत के इंग्लैंड रिटर्नड कृषि विभाग के संचालक ने उत्तर दिया था,

"यदि आपको किसी और नाम से भी पुकारा जाय तो क्या बिगाड़ लेंगे आप?"

परन्तु डा० लोगो बनस्पती अंग्रेज़ थे और डा० लूकस खालिस अंग्रेज़। वे अपना सफेद और मज़बूत हाथ मेरे दुबले और चौड़े हाथ पर चलाते बोले,

"हाओ डू यू डू ?"

"आप कालेज में प्रोफेसर हैं," कपूर साहिब ने मेरा परिचय कराते हुये कहा ।

"ग्रैंड !" मुझे संदिग्ध दृष्टि से तकते हुये डा० लूकस बोले।

गोल कमरे में प्रविष्ट होते ही उन्होंने श्रीमती तथा मिस कपूर को दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते की और सोफे पर बैठ गये ।

फ़ौरन बाद नौकर ट्रे में चाय लेकर कमरे में आया ।

"आप चाय लीजिये ना," श्रीमती कपूर मुझे सम्बोधित करते हुये बोलीं ।

"ज़रूर ।"

"मैंने एक कप में .चाय का पानी, दूध और चीनी डाली और कप को संभाल लिया । डा० लूकस ने चीनी और दूध के बिना चाय का कप अपने हाथ में ले लिया । उनके विचारानुसार चाय का मतलब महज़ चाय थी । श्रीमती कपूर मिठाई की प्लेट अतिथि के पास ले जाकर बोलीं ।

"लीजिये ना ! गाजर का हलवा है ।"

"थैंकयू ।" डा० लूकस अपनी सीट पर आधे खड़े हो, सिर झुकाते हुये बोले,

"मैं गाजर का हलवा नहीं खाता ।"

"और क्या मूली का हलवा खाता है ?" मिस कपूर ने धीरे से कहा ।

मैं बड़ी कठिनाई से चाय के गर्म घूंट के साथ स्वादिष्ट हंसी को पी सका । मैंने मिस कपूर को आंख के इशारे से समझाया कि यद्यपि डा० लूकस अब शासक जाति का व्यक्ति नहीं, अतिथि अवश्य है ।

उन्होंने फौरन आँख के इशारे ही से उत्तर दिया कि ऐसे पचासों अतिथि आते हैं जिन में से मैं स्वयं भी एक हूँ।

"अच्छा पकौड़े लीजिये," श्रीमती कपूर ने हलवे की प्लेट को मेज़ पर रख कर, नौकर से पकौड़ों की प्लेट हाथ में लेते हुए कहा। "गोभी के गर्म पकौड़े हैं।"

"गोभी के गर्म पकौड़े! खूब!" अंग्रेज अतिथि फिर आधे खड़े होकर बोले, "मैंने पकौड़े इससे पहले भी देखे हैं। मैं गोभी के गर्म पकौड़े नहीं खाता!"

"और भूसे के ठण्डे पकौड़े खाता है?" मेरे कानों में एक बारीक सी आवाज़ आई।

श्रीमती कपूर जिन्हें अपने जीवन में पहली बार पराजय का सामना करना पड़ा था, लगातार दो बार हार खाने के बाद अपनी जगह पर बैठ गईं। यदि डा० लूकस उसी समय तशरीफ़ ले जाते तो उनका सारा रोष मुझ पर और मि० कपूर पर उतरता। किन्तु भाग्यवश डा० लूकस एक प्याली समाप्त करने के बाद, चाय की दूसरी प्याली की ओर झुके। सहसा श्रीमती कपूर अपनी जगह पर से उठीं और पकौड़ों की प्लेट लेकर मेरे पास आ पहुँचीं और गम्भीरतापूर्वक बोलीं,

"आप को तो गोभी के पकौड़ों से घृणा नहीं?"

"मैं तो क्या मेरे बड़ों को नहीं हो सकती," मैंने उनकी गम्भीरता से प्रभावित होकर सारी तश्तरी को सम्भालते हुये कहा।

"सब नहीं। और भी तो हैं," उन्होंने मुझे डांट बतलाई।

मैं ने चमचे से दो चार पकौड़े अपनी प्लेट में सरका लिये और बनाने के आर्ट में दक्ष श्रीमती कपूर का रस्मी शुकरिया करने के विचार से एक पकौड़ा मुंह में रख लिया। लेकिन दूसरे ही क्षण मैं तड़प उठा जैसे नाग ने डस लिया हो। एक तो कमबख्त गर्म,

दूसरे मिर्चों से भरा हुआ। अपने आप को वश में न रख मैं सीट से तड़प कर उठा। लेकिन उसी समय डा० लूकस की निगाह मेरी ओर उठी। मैं फौरन ज़रा झुक गया और श्रीमती कपूर की ओर मुंह करके खड़ा हो गया।

"पकौड़ा बहुत अच्छा होगा," मुझे इस प्रकार रस्मी शुकरिया अदा करते देख कर डा० लूकस बोले।

"बहुत," मैंने आंखों से निकलते आंसुओं और मुंह से निकलते हुये पानी को रोकते हुये कहा।

"आंसू कैसे हैं मि० संगर आप की आंखों में?" अतिथि ने पूछा।

"हर्ष के आंसू," मैंने कहा।

"हर्ष के आंसू!" अंग्रेज ने अट्टहास से कहा। "तुम लोग मिर्च बहुत खाता है, इसीलिये हम पकौड़ा नहीं खाता।"

मैंने श्रीमती कपूर की ओर देखा। वह मुस्कराईं। मिस कपूर से न रहा गया। बोलीं,

"लेकिन डा० लूकस हलवे में तो मिर्च बिल्कुल नहीं थी।"

"हलवे में मीठा बहुत होता है।"

"तो आप समोसे खाइये।"

"समोसे! आप के समोसे खूब होते हैं! लेकिन मैं समोसे नहीं खाता।"

"तो आप क्या खाता है?" मिस कपूर ने पूछा।

"बिस्किट।"

"वे तो बच्चे खाते हैं?"

"खूब! आप के शहर में बच्चे बिस्किट खाते है?" वह बोले।

"लेकिन डा० लूकस ! क्या आप इस के पहले भी कभी हमारे शहर में आये हैं ?"

"नहीं, मेरा यहां पहला विज़िट है ?"

"आपके विचार में कैसा शहर है ?"

"खूब ? खूब ! अच्छा ही तो है।"

"इसका मतलब अच्छा नहीं," श्रीमती कपूर मुस्कराकर बोलीं।

"हां, वास्तव में बात यह है कि हिन्दुस्तान के सब शहर एक जैसे ही हैं।"

"प्रत्येक शहर के देश एक जैसे होते होंगे," कपूर साहिब खामोशी की मुहर तोड़ते हुये बोले।

"ऐसा नहीं, संसार के बहुत कम ऐसे शहर हैं जहाँ अभी तक आप को हिन्दुस्तान सी गंदगी देखने को मिले।"

"परन्तु इंगलैंड में तो आज भी बहुत से ऐसे शहर हैं जिनकी हालत बहुत खराब है," मैंने इस ढंग से बात की जैसे कई वर्ष वहाँ गुज़ार कर आया होऊँ।

डा० लूकस ने घूर कर मेरी ओर देखा, परन्तु शायद इन्हें तुरन्त ही ख्याल आ गया कि हिन्दुस्तान अब आज़ाद देश है। बोले,

हाँ, ठीक है। परन्तु आप लोगों को परिवर्तन और उन्नति के लिये एक काम करना चाहिये।

"क्या ?" मैंने पूछा।

"पुराने शहरों को उड़ा देना चाहिये,"

"गोली से ?"

"मतलब, उन्हें आग से जला कर, उनके बजाय नये शहर आबाद करने चाहिये।"

"डा० लूकस !" मैंने सिगरेट को दियासिलाई दिखलाते हुये कहा, "अंग्रेज़ को आग बहुत अच्छी लगती है यदि दूसरों के घर को लगी हुई हो।"

"उदाहरणतः ?"

"उदाहरणतः भारत को छोड़ने से पहले आपने हमारे घरों को आग लगा कर खूब तमाशा देखा, फिलस्तीन में आपने किस खूबी से शोले भड़काये। मिश्र को तो जला डालने ही को थे। और ऐसा मालूम देता है कि मलाया और केनिया को आप राख करके ही दम लेंगे।"

"आप एंग्लो-अमेरिकन ब्लाक के विरोधी और रूस-चीनी ब्लाक के पक्षपाती मालूम देते हैं," वह आधे बिस्कुट को प्लेट में रखते हुये बोले।

"हम न तो एंग्लो-अमेरिकन ब्लाक के पक्ष में हैं, न रूसी ब्लाक के। हमें गुटबन्दियों से घृणा है। पहले ये गुटबन्दियाँ साम्प्रदायिक झगड़ों तथा धार्मिक युद्धों को जन्म देती थीं, अब इज़मों का रूप धारण करके मानवता का खून करने को तुली हुई हैं। हम भारतवासियों को न इज़्म से कोई प्रेम है, न आपके साम्राज्यवाद से।"

"परन्तु हमने भारत और पाकिस्तान, बर्मा और लंका को आज़ादी दी। इस पर भी आप हमें साम्राज्यवादी कहते हैं।" डा० लूकस का लाल चेहरा और भी सुर्ख हो उठा।

"भला इससे अच्छी पद्वी हम आप को क्या दे सकते हैं ?" मिस कपूर ने कानाफूसी की! डा० लूकस समझ रहे थे कि शायद वे अपने स्वेटर बुनने की सिलाइयों से बातें करने में व्यस्त हैं।"

"इसलिये कि आपकी सरकार की नीति आज भी इम्पीरियलिस्ट है," मैंने उन की बात का उत्तर देते हुये कहा। पूर्वी अफ्रीका और मलाया में आपने वहां के वासियों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करके उन्हें

खत्म करने का निश्चय कर रखा है। आप ज़मीन और आकाश से उन पर मौत बरसा रहे हैं। उन का केवल यह दोष है कि वे अपने देश में अपना शासन चाहते हैं। साम्राज्यवादी शक्तियों की आप खुल्लम-खुल्ला सहायता कर रहे हैं। ट्यूनिस, मरक्को और अलजेरिया साम्राज्य-वाद की जड़ें मज़बूत कर रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका में मलान की रंग और जाति की थ्योरी को बढ़ावा दे रहे हैं।"

"परन्तु आप यह नहीं जानते कि हमारी नीति का सारांश यह है कि हम इन देशों में साम्यवाद के पाव न जमने दें।"

"हां, यों तो आप हर काम असूल पर करते हैं" मिस कपूर बोलीं। "आप हिन्दुस्तान में केवल इस कारण थे कि हमें सभ्य बना सकें?

डा० लूकस अपनी सीट पर से उठ खड़े हुये। मैंने सोचा कि जलती-जलती चाय की प्याली मुझ पर दे मारेंगे। परन्तु वह पूरे नहीं उठे केवल थोड़े से झुके और मिस कपूर की ओर देख कर बोले,

"थैंक यू मैडम। बिल्कुल हमारा यही मिशन था", और फिर अपनी जगह पर बैठ गये।

"वैसे तो यूरोप के सब राष्ट्रों का मिशन पूर्वी देशों को सभ्य बनाना ही रहा है।" श्री कपूर लम्बी खामोशी को तोड़ते हुये बोले।

"बिल्कुल!" डा० लूकस ने मेरी ओर विजयी दृष्टि से ताकते हुए कहा।

"मैं भी इस बात से सहमत हूँ," मैं ने गोभी के ठण्डे पकौड़े को मुंह की ओर ले जाते हुये कहा। "उदाहरणतः यूरोप के राष्ट्रों ने अन्याय का सिर कुचलने के लिये बीस वर्ष के न्यून काल में दो विश्व युद्ध लड़े, और सभ्यता का बोलबाला करने के लिये दोनों युद्धों में विज्ञान के नवीन शस्त्रों का प्रयोग किया। प्रथम विश्व युद्ध में वायुयानों द्वारा गोले बरसा कर और द्वितीय युद्ध में अणुबम का प्रयोग कर सभ्यता

को प्रोत्साहन दिया तीसरे विश्व युद्ध में उद्रजन बम का प्रयोग करके मानव जाति को ध्वंस करने का क्रेडिट भी गोरी चमड़ा ही को मिलेगा।"

"दरअसल यह हमारी प्रबल इच्छा रही है।" डा० लूकस बोले, "कि संसार में शान्ति फैले। हमने पहली दो लड़ाइयां प्रजातन्त्र की रक्षा के हेतु लड़ी थीं और तीसरी लड़ाई शान्ति की रक्षा के लिये लड़ेंगे। अमन हमारा खास मिशन रहा है। जब हम भारत में आये तो यहां के लोग आपस में लड़ रहे थे। हमने उन्हें शान्ति और एकता प्रदान की।"

"डा० लूकस!" मैंने चाय का घूंट भरते हुये कहा, "आप भारत में केवल इस कारण आ सके कि हम आपस में लड़ रहे थे ·······"

"और देश में एकता नहीं थीं" मि० कपूर ने वाक्य पूरा किया!

"हमारे आने से पहले क्या यहां कभी एकता थी?"

"इतिहास तो यही बतलाता है," मैंने कहा। "यदि आप चन्द्रगुप्त और अशोक, विक्रमादित्य और कनिष्क, हर्ष और अकबर के ज़माने का इतिहास पढ़ें तो आपको इसका उत्तर मिल जायगा।"
"फिर यहां बाहर वाले क्यो आते रहे?"

"हमारी भूलों के कारण।" मैंने कहा। "जब हमारे अपने स्वार्थ ने हमारे अन्दर प्रांतीयता और साम्प्रदायिकता का भाव पैदा किया और जातपात के भेदभाव ने हमारे अन्दर घृणा उत्पन्न कर दी, तो विदेशी आक्रमणकारियों ने हमारी दुर्बलता का पूरा-पूरा लाभ उठाया।"

"लेकिन आप लोग भी एक शरीफ़ आदमी की शराफ़त से ग़लत लाभ उठा रहे हैं।" श्रीमती कपूर बोलीं। "आपको बड़ी खराब आदत है कि आप हर समय बहस पर तुले रहते हैं।"

"हिन्दुस्तान के सामने और बहुत बड़ी समस्यायें हैं। सब से पहले

आप लोगों को यह चाहिये कि बच्चे पैदा करने बन्द करें।" शरीफ आदमी बोला।

"तो और क्या बंदर पैदा करें?"

"बंदर पैदा करने से पैदावार बढ़ने के बजाय कम हो जायगी।"

"लेकिन हमारे देश की इंगलैंड की अपेक्षा प्रतिवर्ग मील जन-संख्या बहुत कम है," कपूर साहिब बोले।

"आय के साधन भी तो बहुत कम हैं" लूकस ने कहा। हमारा भी इण्डस्ट्रीयल रेवोल्यूशन से पहले यही हाल था।"

"और आज क्या हाल है?" मिस कपूर बोलीं।

"आज? आज हाल अच्छा नहीं। परन्तु हमें विश्वास है कि हमारा साहस साथ नहीं छोड़ेगा और हम वीरतापूर्वक कठिनाइयों से लड़ते हुये उन पर विजय प्राप्त करेंगे।"

"इस में कोई संदेह नहीं," कपूर साहिब बोले, "कि अंग्रेज़ का राष्ट्रीय चरित्र बहुत प्रशंसनीय है। इस चरित्र के कारण ही उसने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये अपने राजाओं के विरुद्ध भी युद्ध लड़ा और प्रजतंत्र का एक ऐसा ढांचा तैय्यार किया जिसका अनुकरण संसार के इतने देशों ने किया। इंगलैंड निस्संदेह प्रजातंत्र की मा है और हमने अभी इस से बहुत कुछ सीखना है।"

"परन्तु आपके देश में अंग्रेज़ी का उन्मूलन करने के लिये तो बड़ी कोशिश की जा रही हैं," लूकस ने अपनी गंजी चाँद पर हाथ फेरते हुये कहा।

"लोग अंग्रेजी भाषा के इसलिये विरोधी हैं कि इस के कारण हम ने अपनी ज़बानों को भुला दिया," मैंने कहा।

"बिल्कुल!" कपूर साहिब बोले। "नहीं तो अंग्रेज़ी सीखने के फलस्वरूप हम ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध उन्हीं का शस्त्र प्रयोग करके, उन

से अपनी आज़ादी छीनी । अंग्रेज़ी साहित्य मोतियों से भरा पड़ा है। दूसरों से सीखने में बुराई मानना मूर्खों का काम है।"

"दूसरों का समय लेना भी," डा० लूकस अपनी घड़ी को देखते हुये बोले। "अच्छा मि० कपूर! मैं आपका धन्यवाद करता हूँ, और मिसेज़ और मिस कपूर का भी। कुछ हद तक।" वह मेरी ओर देखते हुये बोले, "आप के कम्यूनिस्ट मित्र का भी। बाई बाई............"